3250

शोधादर्श

४४–४९

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

354-14

कवर पृष्ठ 1 पर चित्र परिचय

जैन प्रतीक चिन्ह

तीन लोक–ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। ऊर्ध्वलोक में शीर्ष पर अर्धचन्द्राकार सिद्धशिला है; सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्र मोक्षमार्ग के साधन–रूपी 3 बिन्दु हैं; स्वस्तिक शुभकारी है। सभी जीव परस्पर अनुग्रह से जुड़े हुए हैं, जिसका आधार अहिंसा है।

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक : (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक : (स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक : डॉ. शशि कान्त
सम्पादक : श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक : श्री सन्दीप कान्त जैन
: श्री अंशु जैन 'अमर'
: सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004
ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com मो. 9236062715

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं
ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है
सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है

शोधादर्श-88-89

वीर निर्वाण संवत् 2545–2546 जनवरी–जून व जुलाई–दिसम्बर 2019 ई.

विषय क्रम

			पृ.
1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	3–4
2	गुरुगुण–कीर्तन स्वयम्भू	श्री रमा कान्त जैन	5–7
3	निच्छू और विद्वान – एक समाना	श्री अजित प्रसाद जैन	8–9
4	Essence of Jainism	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	10–13
5	अहिंसा विमर्श	डॉ. शशि कान्त	14
6	Non-violence in Action	डॉ. शशि कान्त	15–19
7	अहिंसा का प्रशिक्षण बनाम विश्वशांति	डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'	20–29
8	श्रमण संस्कृति में राष्ट्रीयता	डॉ. प्रेमचन्द जैन	30–38
9	श्रुत पंचमी पर्व	डॉ. (श्रीमती) संगीता शुक्ल	39–41
10	क्षमा का जीवन दर्शन	डॉ. अनेकान्त कुमार जैन	42–43
11	कैसे करें और मांगे क्षमा	श्रीमती रुचि अनेकान्त जैन	44–45
12	शंका–समाधान	श्री आदिकुमार भगवंतराव बंड	46
13	पश्चिमी संस्कृति के अन्धानुकरण की लत	डॉ. लोकेश जैन	47–50
14	जैन समाज की वर्तमान स्थिति	डॉ. अनिल कुमार जैन	51–57
15	जैन समाज के समक्ष चुनौतियां	श्री सन्दीप कान्त जैन	58–61

16	रोगोपचार, अहिंसा की आवश्यकता	डॉ. चंचलमल चौरड़िया	62–65
17	चली कुल्हाड़ी वृक्ष पर (पद्य)	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	66
18	विदेशी संस्कृति की मेज़बानी (पद्य)	डॉ. परमानन्द जड़िया	67
19	मनुष्यता (पद्य)	डॉ. परमानन्द जड़िया	68
20	चलता जाता हूं (पद्य)	श्री राजीव कान्त जैन	69–70
21	दूध (पद्य)	कवि युगराज जैन	71
22	चल अकेला (पद्य)	श्री अजित जैन 'जलज'	72
23	इतना–सा साथ	श्रीमती शैफाली मित्तल	73–75
24	अन्न का प्रभाव	श्री कैलाश नारायण टण्डन	76–81
25	तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति प्रतिवेदन वर्ष 2018–19	श्री नलिन कान्त जैन	82–85
26	स्मरणीय–श्री महावीर प्रसाद जैन श्री हुकम चन्द जैन	डॉ. शशि कान्त	86–88 88
27	साहित्य सत्कार	डॉ. शशि कान्त	89–97
	Mathematics in Jainism; श्रवणबेलगोल में संख्यान; **Soul Science;** सम्मूर्च्छिम मनुष्य; **Dravya Sangraha & Ishtopadesh; Chhah Ddhaala;** चिन्तामणि–त्रय समीक्षा; नरसिंहपुरा जैन समाज; अमृत कलश; **Living Systems in Jainism;** जैन प्रमाण शास्त्र; वीर – स्मृतिशेष विशेषांक; तेजोवलय पद्मा मां; लोक संरक्षक दिक्पाल; गोलापूर्व जैन समाज; ऐसा वर दो		
28	समीक्षा – शोधादर्श 87	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	98–102
29	आभार		102
30	अभिनन्दन		103–105
31	शोक सम्वेदन		105
32	समाचार विविधा		106–107
33	पाठकों के पत्र		108–114
	श्री अजित जैन 'जलज'; डॉ. अनिल कुमार जैन; श्री आदिकुमार भगवंतराव बंड; श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'; श्री निर्मल कुमार जैन सेठी; डॉ. परमानन्द जड़िया; डॉ. प्रेमचन्द जैन; श्री बी.डी. अग्रवाल; डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'; श्रीमती रंजना बंसल; श्री सुरेश जैन 'सरल'		
34	धन्यवाद ज्ञापन	डॉ. शशि कान्त	115–116
35	आवश्यक सूचना	कवर पृ.3	

सम्पादकीय

हमें इस बात का खेद है कि वर्ष 2019 ई. में अंक 88 और 89 समयानुसार प्रकाशित नहीं किये जा सके। इसमें एक कारण यह रहा कि पिता जी डॉ. शशि कान्त काफ़ी समय गम्भीर रूप से अस्वस्थ रहे, दूसरा कारण मेरी पारिवारिक कार्यों में व्ययस्तता रही। अतः अंक 88–89 का संयुक्तांक प्रस्तुत किया जा रहा है। देश की विषम परिस्थितियों को देखते हुए पत्रिका के मुद्रण और प्रेषण में विलम्ब होना सम्भव है।

इस अंक में विशेष रूप से **अहिंसा** पर विवेचन है। अहिंसा किसी भी प्रकार राष्ट्र के हित में और समाज के हित में कार्य करने में बाधक नहीं है, इसको कायरता का रूप समझना उचित नहीं है।

क्षमा पर भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है जो इसके सम्बन्ध में भ्रांति का निराकरण करता है। **समाज की दशा** पर चिन्तन किया गया है जो समाज को जागरुक करने के लिए और धर्म के नाम से आडम्बर से विरत होने के लिए सामग्री प्रदान करता है।

वर्ष 2018–19 की तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., की रिपोर्ट एवं लेखा इसी अंक में प्रकाशित किये जा रहे हैं।

कुछ स्मरणीय महानुभावों का स्मरण भी किया जा रहा है। शंका–समाधान को भी स्थान दिया गया है। कुछ विविध सामग्री भी दी गई है, जैसे कि पद्य रचनाएं, कथात्मक आलेख आदि।

साहित्य सत्कार, आभार, अभिनन्दन, शोक सम्वेदन, समाचार विविधा, और पाठकों के पत्र, यथावत दिये गये हैं।

श्रद्धेय पितामह ने शिक्षित युवा वर्ग को ध्यान में रखकर सहज अंग्रेजी भाषा में Essence of Jainism 1981 में लिखा था। इसमें जैन धर्म के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक स्वरूप को संक्षेप में बताया गया है ताकि युवा वर्ग की इस विषय में जिज्ञासा बढ़े।

पिता जी ने उनको प्राप्त सम्मान के लिए सभी शुभ चिन्तकों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया है। साथ ही, कुछ विशिष्ट बिन्दुओं पर संक्षेप में चिन्तन भी प्रस्तुत किया है।

अपने लेखकों से हमारा यह आग्रह है कि वे कृपया अपना लेख और विचार 3–4 टंकित पृष्ठों से अधिक में न भेजें। यह भी आग्रह है कि पाठक गण अपनी पाठकीय समीक्षा से अवश्य अवगत करायें ताकि हमें **शोधादर्श** को शोध की और समाज चेतना की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन मिलता रहे।

– नलिन कान्त जैन

सम्पादक

31–12–2019

स्वयम्भू

– श्री रमा कान्त जैन

परिचय

पुण सयंभु पुरिसोत्तिम णामें, पुरिस पुंडरीयं जयकायें।

–उत्तर पुराण, महाकवि पुष्पदन्त (10वीं शती ई.)

भावार्थ – फिर स्वयम्भू नाम के पुरुषोत्तम और काम पर विजय पाने वाले पुण्डरीक नाम के पुरुष हुए।

जो सयंभु सो देउ पहाणउ, अह कह लोयालोय वियाणउ।।

– धम्मपरिक्खा, कवि हरिषेण (10वीं शती ई.)

भावार्थ – जो स्वयम्भू हैं वे तो देवताओं में भी प्रधान अर्थात् महान देवता हैं क्योंकि वह लोक और अलोक (परलोक) सबका ज्ञान रखते हैं।

चउमुहु सयंभु कइ पुष्फयंतु, इउ सयंभु भुवणं पि रंजउ।

– सयलविहिविहाणकव्व, महाकवि नयनन्दि (11वीं शती ई.)

भावार्थ – चतुर्मुख और स्वयम्भू कवि ने (अपभ्रंश भाषा और साहित्य में) पुष्प खिलाये हैं और उनमें स्वयम्भू तो भुवन (संसार) का रंजन करने वाले (आनन्द देने वाले) भी हैं।

पुणवि सयंभु महाकइ जायउ।

–अरिट्ठणेमिचरिउ, महाकवि रइधु (15वीं शती ई.)

भावार्थ – फिर महाकवि स्वयम्भू उत्पन्न हुए।

सच्छन्द–वियउ–दाढो, छन्दो (वा) लंकार–णहर दुप्पिच्छो।
वायरण–केसरडड्ढो सयंभु पंचाणणो जयउ।।

– जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, भाग–2,

(पंडित परमानन्द शास्त्री की प्रस्तावना पृ 37, टिप्पणी–2)

भावार्थ – जो सच्छन्द रूप विकट दाढ़ों और छंद एवं अलंकार रूपी नखों एवं द्विपिच्छ (पूंछ) को धारण करने वाला है और व्याकरण रूपी केसर जिसकी अयाल है, ऐसे पंचानन (सिंह के समान) स्वयम्भू जयी हों।

कृतियां

उपर्युक्त उद्धरणों में अपभ्रंश भाषा के परवर्ती साहित्यकारों द्वारा स्वयम्भू नामक जिस व्यक्ति का सादर स्मरण एवं गुणगान किया गया है,

वह अपभ्रंश साहित्य के सर्वाधिक चर्चित और "कविराज" एवं 'छंद चूड़ामणि' उपाधियों से सम्मानित तथा **पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ स्वयम्भूच्छन्द, सोद्धयचरिउ, पंचमिचरिउ** एवं **स्वयम्भू–व्याकरण** नामक छह कृतियों के रचयिता, महाकवि स्वयम्भू हैं। इनकी प्रथम तीन कृतियां प्रकाश में आ चुकी हैं और शेष तीन अभी अनुपलब्ध बताई जाती हैं।

पांच काण्डों और 90 सन्धियों में विभाजित 12000 पद्यों में अपभ्रंश भाषा में निबद्ध **पउमचरिउ** महाकाव्य बाल्मीकि की संस्कृत **रामायण**, आचार्य विमलसूरि के प्राकृत में रचित पउमचरिउ और आचार्य रविशेण के संस्कृत पद्मपुराण में दिये गये रामकथानक का कवि स्वयम्भू द्वारा अपनी कल्पना के मिश्रण से पल्लवित–पुष्पित रूप है। इसकी अन्तिम 7 सन्धियां इनके पुत्र त्रिभुवन द्वारा पूर्ण की गयी बताई जाती है।

कवि का दूसरा महाकाव्य **रिट्ठणेमिचरिउ** अर्थात् अरिष्टनेमिचरित है जिसमें **हरिवंशपुराण** और **महाभारत** पर आधारित कथानक है। इसकी 112 सन्धियों में 92 स्वयं कवि द्वारा और शेष 20 उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयम्भू द्वारा रचित बताई जाती है।

अपभ्रंश और प्राकृत के विभिन्न कवियों के छन्दों के उदाहरण प्रस्तुत करने वाली **स्वयम्भूच्छन्द** कवि की छन्दों से सम्बन्धित अनूठी कृति है जिसका सम्पादन प्रो. एच.डी. वेलणकर ने किया है।

परिवार एवं समय

मरुतदेव और पद्मिनी के पुत्र, अमृताम्बा और आदित्याम्बा विदुषियों के पति तथा प्रतिभाशाली त्रिभुवन स्वयम्भू के पिता महाकवि स्वयम्भू डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर के अनुसार महाराष्ट्र के पूर्वी भाग में स्थित बराबर के निवासी थे। उन्होंने राष्ट्रकूट सम्राट के सामन्त धनंजय के आश्रय में साहित्य सृजन किया था। इनकी कृति 'पउमचरिउ' के सम्पादक डॉ. भायाणी ने बाह्य साक्ष्यों के आधार पर इनका समय 840–920 ई. अनुमानित किया है।

महत्व

जिस प्रकार महाकवि कालिदास अपनी उपमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं, डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण' ने स्वयम्भू को 'उत्प्रेक्षा सम्राट' माना है। लोकोक्तियों के प्रयोग में कुशल स्वयम्भू डॉ0 गजानन नरसिंह साठे के शब्दों में –"अपभ्रंश के आदिकवि हैं, अपभ्रंश के रामकथात्मक काव्य के

व्यास हैं और अपभ्रंश का कोई भी परवर्ती कवि स्वयम्भू के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सका है।"

अपनी **'हिन्दी काव्यधारा'** पुस्तक में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है –"हमारे इसी युग में नहीं, हिन्दी कविता के पांचों युगों के जितने कवियों को हमने यहां संग्रहीत किया है, यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनमें स्वयम्भू सबसे बड़ा कवि था। वस्तुतः वह भारत के एक दर्जन अमर कवियों में से एक था।" सांस्कृत्यायन के अनुसार संस्कृत काव्य गगन में जो स्थान **कालिदास** का है, हिन्दी में **तुलसी** जिस स्थान पर है, प्राकृत में जो स्थान **हाल** ने प्राप्त किया, अपभ्रंश के सारे काल में **स्वयम्भू** वही स्थान रखते हैं।

उपयोगी सूक्तियां

स्वयम्भू कृत **पउमचरिउ** की कतिपय सूक्तियां

1 **तिह जीवहि जिह परिभमइ कित्ति।** (7.12.1)

अर्थ – ऐसे जीओ जिससे कीर्ति फैले।

2 **तिह हसु जिह ण हसिज्जई जणेण।** (7.12.2)

अर्थ ऐसे हंसो जिससे लोगों द्वारा हंसी का पात्र न बनो।

3 **तिह भुज्जु जिह ण मुच्चहि धणेण।** (7.12.2)

अर्थ –इस प्रकार भोगों का भोग करो कि धनहीन न बन जाओ।

4 **तिह तजु जिह पुणु वि ण होइ संगु।** (7.12.3)

अर्थ –इस प्रकार त्याग करो कि फिर उसे ग्रहण न करना पड़े।

5 **तिह मरु जिह णावहि गब्भवासे।** (7.12.5)

अर्थ –ऐसे मरो जिससे फिर गर्भ में वास न करना पड़े, (अर्थात् पुनः जन्म धारण न करना पड़े)।

(शोधादर्श 20, से संकलित)

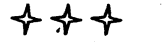

बिच्छु और विद्वान – एक समाना

– श्री अजित प्रसाद जैन

श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित शौरसेनी प्राकृत एवं सांस्कृतिक मूल्यों की त्रैमासिकी पत्रिका **प्राकृत विद्या** के विद्वान सम्पादक डॉ. सुदीप जैन ने, संयुक्त राष्ट्र संघ के गजेटियर में यह पढ़ कर कि बिच्छु विद्वानों का प्रतीक चिन्ह है, इस विषय पर गहन–चिन्तन–मन्थन व अध्ययन के फलस्वरूप बिच्छुओं और विद्वानों के कई गुणों में अद्भुत समानता लक्षित की है, यथा –

1 बिच्छु बहुत स्वामिभमानी होता है, यदि कोई उसे ढक दे, तो वह अपना डंक स्वयं को मार कर आत्महत्या कर लेता है। वस्तुतः श्रेष्ठ विद्वान भी अप्रतिम स्वाभिमानी होते ही हैं।

2 बिच्छु अपने हथियार (डंक) को सदैव सावधान, सक्रिय और उन्नत रखता है, तो विद्वान भी अपने प्रमुख अस्त्र बुद्धि–बल को सदैव जागरूक एवं क्रियाशील बनाए रखते हुए उसी पर गर्व करता है। धन आदि संसाधन उसे बौद्धिक सामग्री की तुलना में तुच्छ प्रतीत होते हैं।

3 बिच्छु कभी भी अपने शिकार को खाता नहीं है, अपितु उसका रस चूस कर उसे अक्षत छोड़ देता है। तो विद्वान भी ग्रंथों को अक्षत रख कर उनके हर्द को पूर्णतः आत्मसात करने की प्रवृत्ति वाले होते हैं।

4 बिच्छु सदैव धूप, भीड़–भाड़, कोलाहल से दूर शांत, शीतल, एकान्त स्थल में निवास करना पसन्द करता है। तो सच्चा विद्वान भी फालतू इधर–उधर की भाग–दौड़, भीड़–भड़क्का व तनाव के वातावरण से दूर रह कर शांतिपूर्वक, एकान्त स्थल में अपनी ज्ञान साधना करते रहना चाहता है।

डॉ. सुदीप जी को बिच्छु और विद्वान में केवल एक ही अन्तर दिखाई पड़ा है और वह यह है कि जबकि विद्वान संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य जाति का प्राणी है, बिच्छु तीन इन्द्रिय तिर्यंच गति का कीट है। **प्राकृत विद्या** के जुलाई–सितम्बर 1998 के अंक के आवरण पृष्ठ को बिच्छु के चित्र से अलंकृत किया गया है तथा आवरण पृष्ठ दो पर विद्वान सम्पादक जी ने चित्र के बारे में उपर्युल्लिखित जानकारी दी है। हम डॉ. सुदीप जी को उनकी इस अभूत–पूर्व गवेषणा के लिये तथा विद्वानों को उनकी हैसियत बता देने के लिये बधाई देते हैं। चूंकि वे स्वयं एक श्रेष्ठ विद्वान हैं उन्होंने

बिच्छु के उपर्युल्लिखित गुण स्वयं अपने में अवश्य ही परिलक्षित किये होंगे।

अपनी गवेषणा के उपरोक्त निष्कर्ष की जानकारी देने के बाद विद्वान सम्पादक जी लिखते हैं कि उन्हें "एक स्वप्न हुआ कि नी. एवं ने. द्वय (जिनकी राशि वृश्चिक ही है) पिछले जन्म में बिच्छु थे, मध्य प्रदेश में मनुष्य जन्म पाकर मुनियों को डंक मारते–फिरते हैं, अतः मुनियों को इनसे बच कर रहना चाहिये।" (कदाचित् इन विद्वत्द्वय की किसी आलोचना का दंश डॉक्टर साहब के किसी अधिक श्रद्धेय को ऐसी पीड़ा दे गया जिसका शमन क्षमा याचना से भी नहीं हुआ तथा गहन क्षोभ की मानसिकता में डॉ. साहब को इस विषय पर इतना अध्ययन, चिन्तन, मन्थन करना पड़ा।)

हमें ऐसा लगता है कि विद्वान सम्पादक जी ने इन विद्वत्द्वय के विषय में अपनी बात कहने के लिए स्वप्न का सहारा केवल शालीनता वश लिया है तथा वस्तुतः इनकी वृश्चिक प्रवृत्ति उनके प्रत्यक्ष ज्ञान में ही झलकी है। अब या तो उन्हें अपने पिछले जन्म का जाति–स्मरण हो गया है जब ये विद्वत्द्वय उनके निकट के बन्धु–बांधव रहे होंगे, या फिर कदाचित् उनके असीम पुण्योदय से तथा पूज्य आचार्य श्री के चरण सानिध्य में रहने तथा सभी किस्म के दिगम्बर वेशधारी मुनिराजों में अटूट श्रद्धा रखने के निमित्त से उन्हें अकस्मात देशावधिज्ञान की उपलब्धि हो गई हो।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. सुदीप जी ने अपनी गवेशणा के सभी निष्कर्षों को कदाचित उजागर नहीं किया है क्योंकि उनसे (भूल वश या संकोच वश) वृश्चिकवृत्ती विद्वानों की उस बड़ी प्रजाति का उल्लेख छूट गया है जो किन्हीं निहित स्वार्थों से प्रेरित होकर अपने (मूक या मुखर) अनुमोदन–समर्थन से उपगूहन के नाम पर श्रमणाचार की शिथिलोन्मुख प्रवृत्तियों को प्रगति देने में अपना महती योगदान कर रहे हैं। हम डॉ. सुदीप जी को उनकी अभूतपूर्व खोज के लिए पुनः बधाई देते हैं।

(स्मृतिशेष श्री अजित प्रसाद जैन ने अपना यह विचार–विमर्श शोधादर्श 37, मार्च 1999, में दिया था। विद्वान की बिच्छु से समानता प्रदर्शित किया जाना रोचक है।)

Essence of Jainism

- Dr. Jyoti Prasad Jain

The term 'Jainism' is derived from 'Jina' (meaning 'conqueror of self'), an epithet used for the Tīrthaṅkara (literally, 'Ford-finder'), twenty-four in number with Vardhamāna Mahāvīra (599-527 B.C.) as the last of them. He is credited with reorganizing the four-fold order (ascetics and laity, of both sexes) and with giving Jainism its present shape. That Mahāvīra was a contemporary of Gautama the Buddha, that Jainism is much older than Mahāvīra or the Buddha and that at least Pārśvanātha (877-777 B.C.), the penultimate Tīrthaṅkara, was a historical person, are facts admitted by the majority of modern scholars. Of the two streams, the Brāhmaṇa and the Śramaṇa, of ancient Indian culture and religious thought, it was the latter which is believed to have emanated from that great Magadhan religion which was indigenous in its essential traits and which must have flourished on the banks of the Ganga in Eastern India long before the advent of the Vedic Aryans into mid-India, and it was this current which mothered and nursed the creed of the Jinas which has been known by a number of names, such as, Śramaṇa, Nirgrantha, Arhat, Ahiṁsā, Anekānta, Syādvāda, Bhavya, Sewade, Saraogi, Jain, etc.

We need not go into a detailed exposition of the tenets and doctrines of Jainism. It would suffice to say that Jainism does not accept creation in the Nyāya-Vaiśeśika sense, nor emanation, whether actual or apparent, in the Vedantic sense. With it the universe is existential and real and the cosmic constituents are themselves capable of explaining the diverse phenominae by their mutual action and counter-action. The world of existence is composed of two principal categories, Jīva (life, soul or animate substances) and Ajīva (non-life or matter), the first being the enjoyer and the actor and the second the enjoyed and the acted

upon. It is the interaction of these two which keeps the world going. Subtle matter in the form of **Karma** plays the same role in Jainism as Māyā or Avidyā does in the Vedānta philosophy; it flows into the soul when the latter has become a receptacle for it under the influence of attachment and aversion, diverse passions and emotions. The Karma doctrine as an aspect of the Jain conception of matter, is a complex and elaborate system by itself, a parallel to which is unknown in other systems.

With the plain dogma that an individual soul has for ever been associated with matter (Kārmic matter), **Jainism explains the saṁsāra** (the world of becoming, the beginningless round of births and deaths) as full of pain, suffering, anxiety and misery, and as a remedy against which religion is needed. It is perhaps why, unlike several other philosophical systems, Jainism came to be an institutional religion with all the requisite accessories. The strong realistic tone, apparently an outcome of common sense and analytical approach to objectivity, seems to have kept the Jains from adopting philosophical extremes. For each individual soul, its saṁsāra, although it has no beginning, can certainly have an end. When one becomes alive to the dynamism inherent in himself and launches upon the path of fresh endeavour with heroic fortitude for liberation from the karmic bondage, what has been the vale of tears turns into the vale of soul-making; the journey's end is reached when the mundane soul has purged itself of all impurities alien to its essential nature, has freed itself from all karmic fetters and has thus attained the sublime, transcendental solitariness, perfection and absoluteness of the Kevalin, Arhat or Jina. **This perfect, bodiless and pure soul** then ascends to the summit of the universe, isolated yet unlimited and all-pervading in its omniscience. This is **the final stage, that of the Siddha (the Liberated), the ultimate goal of all religious pursuit according to Jainism.**

In its essential nature Jainism may be described as an ethical religion *par excellence*, because it stresses that to acquire the capability of successfully launching upon the path of liberation one has to clear his mind of all passions and emotions like infatuation, delusion, attachment, aversion, anger, hatred, greed, pride or vanity and deceit and, above all, the lusts of the flesh. All the penances, austerities and the discipline of body, word and mind are practised with the sole aim of making the soul the master of the body. The pampered body can never carry the soul across the ocean, that is, saṁsāra. Man is the measure of all things; he is more favoured than the gods, for no god can attain nirvāṇa (liberation) without being born as man. Man himself is, therefore, God in the making. No extracosmic being needs to be worshipped or believed in. Perfection and bliss lie inherent in oneself waiting to be made manifest. That though evil exists and is very real but can be overcome by one's spiritual force, is the eternal hope that enlivens human efforts for liberation. The pursuer of the path should aim at, and exert himself for, acquiring the capacity to overcome the limitations of bodily nature through the aspirations of his spiritual nature. Even the worship of the Jina or Tīrthaṅkara is recommended not because they can help the worshipper in, or hinder him from, working out his salvation but because of the inherent power of all forms of true worship to elevate the soul of the worshipper, just as giving away in charity alone is good for the giver.

An important feature of Jain philosophy is its doctrine of Anekānta or Syādvāda according to which it is impossible for a person to have absolute incontrovertible knowledge of reality. He can know it only from his own perspective and, therefore, must recognize that it is not the whole truth. When one realizes that reality possesses many facets, not all of which are

known to him, he is apt to grow tolerant of other people's point of view. Two seemingly contrary statements may both be found to be true if only we take the trouble of finding out the different points of view from which they were made.

The path to liberation consists in Samyak-darśana (Right Faith), Samyak-jñāna (Right Knowledge) and Samyak-chāritra (Right Conduct), known as the Tri-ratna or 'Three Gems'. The five most adorable beings (Pañcha-parameshthin) are the Arhanta (Jina), Siddha, Āchārya, Upādhyāya and Sādhu, and the four Śaraṇa (abode or refuge) are the Arhanta, Siddha, Sādhu (nirgrantha ascetics) and the Dharma. Pramoda (pleasure in the company of the meritorious), Maitri (friendship for all living beings), Kāruṇya (compassion for those in distress) and Madhyastha (indifference towards the perversely inclined) are the **four noble aspirations.** The five sins to be shunned and abstained are injury to life, lying, stealing, unchastity and unchecked desire for acquisition; the corresponding five merits to be cultivated being ahiṁsā, truthfulness, honesty, celibacy and possessionlessness, which are observed in the form of partial vows (Aṇuvrata) by the laity (Śrāvaka and Śrāvikā) and as absolute vows (Mahāvrata) by the ascetics (Muni and Āryikā), who constitute the four limbs of the Saṅgha (congregational order). The rules of conduct and self-discipline are graded according to the capacity of the observer.

The six essential daily duties (Shadāvaśyaka)of a lay devotee are worship of the Deva (Jina), serving of the Gurus, study of the scriptures, practice of self-discipline, abstinence or austerity, and four-fold charity (giving away of food, medicine, knowledge and protection to the needy). The tenfold Dharma is said to consist in forgiveness, humility, simplicity, truthfulness, greedlessness, self-control, penance, renunciation, non-covetousness and continence. In short, **Ahiṁsā, both in its positive and negative aspects, is the keynote of practical Jainism.**

(Adapted from Essence of Jainism, published in 1982)

अहिंसा विमर्श

भारत की दार्शनिक, आध्यात्मिक व नैतिक विचारधारा में अहिंसा का विशिष्ट स्थान है। जैन विचारधारा में अहिंसा को विशेष महत्व दिया गया है। अहिंसा के सम्बन्ध में सामान्य धारणा उसे कायरता का लक्षण सूचित करती है परन्तु ऐसा है नहीं। ऐसा अज्ञानतावश कहा जाता है।

वयोवृद्ध विद्वान डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' और डॉ. प्रेमचन्द जैन ने सैद्धान्तिक दृष्टि से अपने लेखों में (जो आगे दिये गये है) अहिंसा का अर्थ स्पष्ट किया है।

तीर्थंकर महावीर के 2500वें निर्वाण वर्ष में आकाशवाणी, लखनऊ, से अंग्रेजी में पांच वार्ताएं प्रसारित की गई थी :–

1 21–11–1974 और 20–4–1975 को **डॉ. ज्योति प्रसाद जैन** की **The Life and Teachings of Lord Mahaveera**

2 2–2–1975 को **डॉ. सतीश चंद्र अवस्थी** की **The Jain Holy Places of Uttar Pradesh**

3 11–5–1975 को **डॉ. उषा माथुर** की **The Jain Literature in Hindi**

4 7–9–1975 को **डॉ. जनार्दन दत्त शुक्ला** की **The Impact of Mahaveer on Indian Culture**

5 और 5–10–1975 को **Non-violence in Action** पर हमारी वार्ता प्रसारित हुई।

जून 1975 में भारत में आपातकाल (Emergency) प्रारम्भ हो गया था। हमारा आशय किसी राजनैतिक परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित नहीं था तथापि अहिंसा का व्यावहारिक स्वरूप यह भी इंगित करता था कि इसका प्रयोग किसी विषम परिस्थिति में अन्याय का प्रतिरोध करने में उपयोगी हो सकता है।

अहिंसा के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक आशय को स्पष्ट करने के लिए अगले तीन लेख दिये जा रहे हैं।

– डॉ. शशि कान्त

Non-violence in Action

-Dr. Shashi Kant

Non-violence is a negative doctrine that ushers into positive action. The word 'non-violence' itself signifies 'negation of violence'. Let us, therefore, first see - what is violence?

Violence is a temper or mood in which an individual or a group of individuals, oftentimes vast multitudes forming a community or a nation, indulge in abuse of power or faculties to the disadvantage or detriment of others. It is manifest in impetuous and unrestrained action, in exercise of excessive, unrestrained, or unjustifiable force, and in committing outrage, profanation, injury or rape. In short, it brings about a situation, physically as well as psychologically, in which nobody feels secure and everybody is afraid of each other. It is a return to the animal instinctive life where intellect, reason and experience have little scope except to subserve impulses and passions.

It is therefore that no thinker who had the well-being of his fellow-beings at heart, ever advocated the cult of violence as *sine qua non* of human conduct. The Indian thinkers in general always abhorred hiṁsā or violence. The Śramaṇa thinkers among them have been more insistent in condemnation of violence. Their thought is reflected in Jainism, Buddhism, and also Vaiśṇavism. The condemnation of hiṁsā has been more systematic and thorough in Jainism. The last of the twenty-four Tīrthaṅkaras revered in Jainism, was Nirgrantha Jñātriputra Vardhamāna Mahāvīra. He was a contemporary of Śākyamuni Gautama Buddha and lived 2500 years ago.

The basic element in hiṁsā is volition to cause hurt. Such volition is a product of environment which shapes individual conduct. It thus acquires social or communal dimensions, and engulfs the entire gamut of human relations. It is a perennial situation. At no time in the known history of mankind there was a

period when the mist of violence fully disappeared. It has caused commotion, revolution and wars that brought untold misery on innocent millions and at times threatened to destroy the entire human civilization and even to wipe out the human race itself. The sense of insecurity and the fear complex generated by such an environment, has goaded man to invent more deadly and subtle weapons in its armoury in a bid to overtake or forestall the enemy. The power of destruction now acquired by man has become a source of concern and scare even to the possessors themselves. The latest weapon in the series is environmental pollution through beams shot from satellites under remote control. It will emasculate the whole populace and make it submit to the will of the masters.

The animal in man has been driven to this end on the instinct of self-preservation. But this has let loose a train of offensives which have made preservation impossible. The man in man, therefore, always felt worried and never felt happy to get the news of expanding armoury. This is why all the thinkers the world over and in all times advocated for change of heart in man so that he may love his fellow-beings and live in peace with them.

The negation of violence is non-violence or ahiṁsā. It presupposes a basic reality that man is superior to other animals in the sense that he can deliberate pros and cons, and thoughtfully exercise discretion to make this existence purposeful. Unless we feel that this life is as much important to the other fellow as it is to me, any talk of making it purposeful would be redundant. So, the first requisite in this direction is the annihilation of ego or self-importance. The theist would make an abject surrender of the self to his god. An atheist would cultivate humility in his words and deeds so as to make his conduct more and more agreeable. The goal is, however, the same in both the cases; it is to restrain *aham* or the elated feeling of self-importance, and to make us mingle

with the mass current in a mood to understand the other man's point of view.

Hiṁsā breeds prati-hiṁsā; violence breeds more violence by prompting us to take revenge. It presupposes intolerance towards the other party. Ahiṁsā, on the other hand, brings temperance and tolerance. The Jain logicians supported their thesis of Ahiṁsā by means of the doctrine of Anekānta, that is, 'Not one-sidedness', and the system of logic known as Syādvāda or Theory of Probable Propositions. Einstein, the great scientist-philosoper of this century, came to a similar conclusion in a different context and propounded the Theory of Relativity. Einstein's Theory of Relativity forms the basis of higher scientific researches, and our command of the atom and the space is its product.

Every being that is endowed with life, has an instinctive fear that somebody might take away life or at least cripple it. This instinctive fear makes us afraid of our neighbour and prompts us to take defensive postures which postulate a series of offensives. All this is instinctive and spontaneous in man as it is with any other specie of living beings. But man can tame this fear as he can tame the wildest of animals. And herein lies his distinctiveness.

The best way to overcome fear is to cultivate a temper by which we would not be inclined to hurt others. When offensive from our side ceases, counter-offensive from the other side would hardly arise, and thus the cause of fear would itself disappear. In short, this is the premise on which the doctrine of non-violence works in practice.

Mahāvīra and Buddha and the many saints and seers advised their disciples to put up an example of a perfect equanimous conduct, eschewing violence completely, but always exuding an effervescence of compassion, humility, love and harmony. They

themselves practised what they preached, and wanted their disciples to do the same so that it might have an impact on their followers and the masses in general. Mere preaching of non-violence is of no consequence; its impact can be felt only if preaching is backed by practice.

The most significant effect of the Ahimsite approach is reflected in a general abhorrence against killing for pleasure. It led to a change in the food habits of millions who would not take a kill for food. The mentors themselves refrained completely from meat or fish or any food or even shelter which they suspected, involved the least violence whether by means of taking away or crippling life, by causing physical injury of whatever description, or even by causing mental agony to, or injuring the feelings of, somebody in any way. They realized that Ahiṁsā in the perfect form could be practised only by those who had forsaken all mundane interests and walked into the wilderness of solitude to experience the supreme bliss. So, they prescribed for all and sundry that violence by volition was to be abhorred, that killing for pleasure or palate was to be shunned, that accommodation for the other man's viewpoint was to be cultivated, and that equanimity, compassion, generosity, sympathy and harmony ought to be reflected in human conduct.

Mahatma Gandhi gave a new dimension to the concept of non-violence by successfully applying it for achieving political ends. His approach was psychological. In the first instance, he sought to make his people fearless. Once they had shed their fear of the authority, they would make an irresistible mass, and it would not be possible to enslave them any longer. The movements that he led between 1921 and 1942 amply proved the efficacy of his approach. The teeming millions, who had lived in constant dread of the British and their stooges, learnt to rise and

cry, and their fearless posture alone was a power in itself to make the enslavers realize the futility of their armed might. Fear makes man weak, but once he has shed fear no amount of force can make him submit to injustice – this was the basis of Mahatma Gandhi's Satyāgraha and its culmination in the peaceful transfer of power in the Indian subcontinent in 1947 demonstrated that big political issues can also be solved without resorting to armed conflict but by awakening the conscience of both the enslaved and the enslaver through a power of will generated by practising non-violence.

The efficacy of non-violence in resolving human problems and in making human life sublime and purposeful, and human conduct wholesome and agreeable, cannot be discounted. By freeing man from the clutches of fear-complex, it gives him an opportunity to cultivate those qualities which may enable him to tame the animal in him and to bring the man in him on the surface. It needs forbearance in the face of provocation, a will to suffer and a resolution to restrain own self. This cannot be practised by the timid or coward. It is therefore misleading to decry non-violence as a harbinger of cowardice and escapism.

Sometimes the ignoramus asks what a person believing in non-violence as a way of life, would do if his country is attacked by enemy, his fields are invaded by locusts, or his city is ravaged by plague or malaria. The categorical answer to these questions is that he will defend his country, he will save his fields and he will help in fighting the epidemic, like a dutiful citizen and a fearless man. Logically, in so doing, he will help in eliminating the process of himsā and thus serve the cause of ahimsā; and fortified with a stronger will he ought to play his part more dutifully and earnestly. The example of Mahatma Gandhi and his dedicated followers amply proves this.

(Broadcast from A.I.R., Lucknow, on Oct. 5, 1975)

अहिंसा का प्रशिक्षण बनाम विश्वशांति

– डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'

'अहिंसा परमोधर्मः' – अहिंसा को परम धर्म घोषित करने वाली यह सूक्ति आज भी बहु प्रचलित है। यह तो एक स्वीकृत तथ्य है कि अहिंसा परम धर्म है, पर प्रश्न यह है कि अहिंसा क्या है? साधारण भाषा में अहिंसा का अर्थ होता है – हिंसा न करना। परन्तु जब भी हिंसा–अहिंसा की चर्चा चलती है तो हमारा ध्यान प्रायः दूसरे जीवों को मारना, सताना या उनकी रक्षा करना आदि की ओर ही जाता है। हिंसा–अहिंसा का सम्बन्ध प्रायः दूसरों से ही जोड़ा जाता है। दूसरों की हिंसा मत करो, बस यही अहिंसा है, ऐसा ही सर्वाधिक विश्वास है, किन्तु यह एकांगी दृष्टिकोण है।

'अपनी भी हिंसा होती है', इस ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। जिनका ध्यान जाता भी है तो वे भी आत्महिंसा का अर्थ केवल विष–भक्षणादि द्वारा आत्मघात (आत्महत्या) ही मानते हैं। उसकी गहराई तक पहुंचने का प्रयत्न नहीं किया जाता है। अन्तरंग में राग–द्वेष–मोह की उत्पत्ति होना भी हिंसा है, यह बहुत कम लोग जानते हैं।

प्रसिद्ध जैनाचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने अन्तरंग पक्ष को लक्ष्य में रखते हुए **'पुरुषार्थसिद्धयुपाय'** ग्रन्थ में हिंसा–अहिंसा की निम्नलिखित परिभाषा दी है–

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्ति–हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।

अर्थात्, आत्मा में राग–द्वेष–मोहादि भावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और इन भावों का आत्मा में उत्पन्न नहीं होना ही अहिंसा है। यही जैनागम का सार है।

प्रश्न है क्या अहिंसा का प्रशिक्षण सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर 'सत्यता के प्रमाणीकरण प्रयोग' से सम्भव है। प्रत्येक सिद्धान्त तभी मान्य होता है जब वह प्रयोगों में खरा उतरे। धर्म परिभाषा नहीं, प्रयोग है और जीवन है धर्म की प्रयोगशाला।

शाश्वत सुख अर्थात् मुक्ति के जिस मार्ग पर महावीर स्वयं चले वही मार्ग उन्होंने सारे जगत को भी बताया, मात्र वाणी से नहीं, जीवन से।

उनके अनुसार सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय – 'स्याद्वाद शैली में अभिव्यक्त अनेकान्तात्मक वस्तु–स्वरूप तथा अहिंसात्मक जीवन शैली है'। इस अहिंसा का प्रशिक्षण सम्भव है।

अहिंसा प्रशिक्षण का स्वरूप : प्रशिक्षण के आधार

अहिंसा प्रशिक्षण का आधार है – हिंसा के बीजों को प्रसुप्त बनाकर अहिंसा के बीजों को अंकुरित करना। इसके लिये प्रशिक्षण आवश्यक है। अहिंसा प्रशिक्षण की प्रक्रिया के दो चरण हैं – 1 सैद्धान्तिक बोध और 2. प्रायोगिक अभ्यास।

अहिंसा के सैद्धान्तिक बोध के अन्तर्गत हिंसा के कारण, परिणाम एवं अहिंसा के सम्वर्द्धन के उपाय का प्रशिक्षण समाविष्ट है, जिससे व्यक्ति की अवधारणाओं में परिष्कार का अवसर मिले और उसके साथ–साथ प्रायोगिक प्रशिक्षण भी चले।

हिंसा के कारण बाहर परिवेश में भी हैं और अन्दर हमारी वृत्तियों में भी। कुछ कारण व्यक्ति में हैं, और कुछ समाज में है। हिंसा का मूल कारण व उपादान व्यक्ति में है। उसको उद्दीप्त करने वाले निमित्त कारण परिवेश में व समाज में हैं।

आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक कारण हिंसा को प्रोत्साहन देते हैं। विषमता, बेरोजगारी, शोषण, दरिद्रता, अतिभाव, विलासिता आदि ऐसे आर्थिक कारण हैं, जिनसे व्यक्ति में निहित उपादान को उत्तेजना मिलती है और वे हिंसा भड़काने में निमित्त बनते हैं।

राजनीति में सैद्धान्तिक आतंकवाद हिंसा की आग में घी डालने का काम करते हैं। साम्प्रदायिक कट्टरता भी हिंसा भड़काती है। ये बाह्य कारण व्यक्ति के आन्तरिक कारणों को जगाते हैं। व्यक्ति के भीतर ही हिंसा के अनेक कारण हैं।

व्यक्ति में हिंसा का एक कारण यह है – अपने मत का दुराग्रह एवं स्वयं को ही सही समझने की दृष्टि। अपने से भिन्न मत वाले को गलत समझने का दृष्टिकोण अन्ततः हिंसा को प्रोत्साहित करता है और पोषण देता है। सुविधावादी, असंयमित, भोगप्रधान जीवन शैली हिंसा को उत्तेजित करती है।

हिंसा और अहिंसा दोनों के बीज मनुष्य के भीतर हैं। ऐसी स्थिति में वातावरण पर ध्यान देना बहुत जरूरी है क्योंकि वही सबसे पहले हमारे

सामने आता है। कुछ लोग सारा भार परिस्थिति पर ही डाल देते हैं। परिस्थिति नहीं बदलेगी तो समस्या का समाधान नहीं होगा। दूसरी ओर अध्यात्मवादी लोगों का मत है कि अन्तर्जगत में सुधार नहीं होगा, उपादान नहीं बदलेगा तो समस्या का समाधान नहीं होगा। ये दोनों ही एकांगी दृष्टिकोण हैं। निमित्त और उपादान दोनों जुड़े हुए हैं। जो घटित होता है वह निमित्त और उपादान के योग से होता है। समग्र परिवर्तन के लिये दोनों पर ध्यान देना अपेक्षित है।

कुछ विद्वान मानस परिवर्तन, संरचनात्मक परिवर्तन, व्यक्तिवादी प्रशिक्षण एवं सामूहिक प्रशिक्षण को एकल रूप में अहिंसा के प्रशिक्षण के लिए रेखांकित करते हैं, वहीं कुछ लोग एक समेकित प्रारूप के प्रस्तुतीकरण पर बल देते हैं। उनके द्वारा विकसित अहिंसा प्रशिक्षण की चतुरायामी अवधारणा मात्र व्यक्ति या मात्र समाज तक नहीं पहुंचती है पर दोनों को एक साथ समाहित करती है। समग्रता के इन चार आयामों में (1) हृदय परिवर्तन, (2) दृष्टिकोण परिवर्तन, (3) जीवन शैली परिवर्तन, एवं तद्नुरूप (4) संरचनात्मक परिवर्तन (व्यवस्था परिवर्तन) सम्मिलित हैं।

(1) हृदय परिवर्तन

हृदय परिवर्तन का अर्थ है भाव–परिवर्तन। भावों का उद्गम स्थल है मस्तिष्क का एक भाग, लिम्बिक संस्थान। हृदय परिवर्तन का पहला सूत्र है निषेधात्मक भावों के परिवर्तन का प्रशिक्षण। निषेधात्मक भावों का उद्दीपन हमारी शारीरिक अस्वस्थता के कारण भी होता है। निषेधात्मक भावों (संवेगों) के परिवर्तन के लिये निम्ननिर्दिष्ट सिद्धान्त सूत्रों का प्रशिक्षण आवश्यक है –

	हिंसा के हेतु	परिणाम
1	लोभ	अधिकार की मनोवृत्ति
2	भय	शस्त्र निर्माण और शस्त्र प्रयोग
3	वैर–विरोध	प्रतिरोध की मनोवृत्ति
4	क्रोध	कलहपूर्ण सामुदायिक जीवन
5	अहंकार	घृणा–जातिभेद के कारण छुआछूत
6	क्रूरता	शोषण, हत्या
7	असहिष्णुता	साम्प्रदायिक झगड़ा

ये संवेग (निषेधात्मक भाव) व्यक्ति को हिंसक बनाते हैं। हृदय परिवर्तन का तात्पर्य है, संवेगों का परिष्कार करना तथा इनके स्थान पर नए संस्कार–बीजों का वपन करना।

सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र

1	लोभ का अनुदय	–	शरीर और पदार्थ के प्रति अमूर्छा, भाव का प्रशिक्षण
2	भय का अनुदय	–	अभय का प्रशिक्षण (आत्मौपम्य भाव का प्रशिक्षण) शस्त्र निर्माण और शस्त्र व्यवसाय न करने की संकल्प शक्ति का प्रशिक्षण
3	बैर–विरोध का अनुदय	–	मैत्री का प्रशिक्षण, प्रतिशोधात्मक मनोवृत्ति से बचने का प्रशिक्षण
4	क्रोध का अनुदय	–	क्षमा का प्रशिक्षण
5	अहंकार का अनुदय	–	विनम्रता का प्रशिक्षण, अहिंसक प्रतिरोध एवं अन्याय के प्रति असहयोग का प्रशिक्षण
6	क्रूरता का अनुदय	–	करुणा का प्रशिक्षण
7	असहिष्णुता का अनुदय	–	साम्प्रदायिक सद्भाव का प्रशिक्षण, भिन्न विचारों को सहने का प्रशिक्षण

मनोविज्ञान के अनुसार शरीर क्रिया, आचार और व्यवहार हमारे भावों (संवेगों) द्वारा नियमित होते हैं। हमारे भावों का नियमन रसायनों द्वारा होता है। ये रसायन अन्तः स्रावों ग्रन्थि तन्त्र द्वारा स्रावित होते हैं। उनका संचालन लिम्बिक–संस्थान (भाव संस्थान) द्वारा होता है। ध्यान एवं अनुप्रेक्षा के प्रयोगों द्वारा इन रसायनों को प्रभावित कर संतुलित किया जा सकता है। इससे भावधारा, आचरण और व्यवहार में परिवर्तन घटित होता है।

हृदय–परिवर्तन का दूसरा सूत्र है स्वास्थ्य और मिताहार का प्रशिक्षण। शारीरिक स्वास्थ्य और अहिंसा में भी आन्तरिक सम्बन्ध है। शारीरिक स्वास्थ्य के अभाव में हिंसा का भाव उपजता है। अतः यह अहिंसा के प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण अंग है।

प्रायोगिक प्रशिक्षण के अन्तर्गत योगासन और प्रणायाम का अभ्यास अहिंसा प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण अंग है।

(2) दृष्टिकोण परिवर्तन

दृष्टिकोण परिवर्तन, अहिंसा प्रशिक्षण का द्वितीय आयाम है। गलत दृष्टिकोण के कारण मिथ्या धारणाएं, निरपेक्ष चिन्तन और एकांगी आग्रह पनपते हैं, जो हिंसा के मुख्य कारणों में हैं। सापेक्ष चिन्तन सामाजिक सम्बन्धों की भूमिका में एक महत्वपूर्ण तत्व है और इससे स्वार्थ की सीमा निश्चित हो जाती है। मानवीय सम्बन्धों में कटुता का हेतु निरपेक्ष दृष्टिकोण है। संकीर्ण राष्ट्रवाद और युद्ध भी निरपेक्ष दृष्टिकोण के परिणाम हैं। सापेक्षता के आधार पर सम्बन्धों को व्यापक आयाम दिया जा सकता है।

जैन दर्शन के महान सिद्धान्तः अनेकान्तवाद का प्रशिक्षण मिथ्या धारणा, निरपेक्ष चिन्तन और आग्रह से मुक्त होने का प्रयोग है। सर्वांगीण दृष्टिकोण को विकसित करने के लिये निम्न निर्दिष्ट प्रयोग आवश्यक है–

सिद्धान्त	प्रयोग
1 सप्रतिपक्ष	सामंजस्य की अनुप्रेक्षा
2 सह–अस्तित्व	सह–अस्तित्व की अनुप्रेक्षा
3 स्वतन्त्रता	स्वतन्त्रता की अनुप्रेक्षा
4 सापेक्षता	सापेक्ष की अनुप्रेक्षा
5 समन्वय	समन्वय की अनुप्रेक्षा

(3) जीवन–शैली परिवर्तन

जीवनशैली का परिवर्तन, अहिंसा प्रशिक्षण का तीसरा आयाम है। इसका एक महत्वपूर्ण सूत्र है– सुविधावादी जीवन शैली में परिवर्तन। यदि सुविधाओं का विस्तार निरन्तर जारी रहे, आडम्बर और विलासपूर्ण जीवन चलता रहे, तो अहिंसा का स्वप्न यथार्थ में परिणत नहीं होगा। जब तक जीवन–शैली में संयम को प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी, तब तक अहिंसा का सार्थक परिणाम नहीं आ सकेगा; श्रम, स्वावलम्बन और व्यसन–मुक्त जीवन का सैद्धान्तिक और प्रायोगिक प्रशिक्षण अपेक्षित है, यथाः

अहिंसा की अनुप्रेक्षा, सत्य–अचौर्य की अनुप्रेक्षा, ब्रह्मचर्य की अनुप्रेक्षा, इच्छा–परिणाम/अपरिग्रह की अनुप्रेक्षा, स्वावलम्बन की अनुप्रेक्षा और व्यसन मुक्ति के प्रयोग।

(4) संरचनात्मक परिवर्तन (व्यवस्था परिवर्तन)

व्यवस्था परिवर्तन, अहिंसा प्रशिक्षण का चतुर्थ आयाम है। व्यवस्थाओं के मुख्य तीन पहलू हैः– आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, तथा राजनीतिक व्यवस्था।

अर्थ की प्रकृति में ही हिंसा है। अतः अर्थशास्त्र एवं आर्थिक व्यवस्था को पूर्णतः अहिंसात्मक नहीं बनाया जा सकता, परन्तु इससे अपराध, क्रूरता, शोषण और विलासिता को अवश्य समाप्त किया जा सकता है। अहिंसक व्यवस्था में साधन–शुद्धि, व्यक्तिगत स्वामित्व की सीमा, उपभोग की सीमा, अर्जन के साथ विसर्जन तथा विलासिता की सामग्री के उत्पादन और आयात पर रोक की व्यवस्था का ईमानदारी के साथ व्यक्ति तथा सरकार दोनों को पालन करना होगा। अहिंसक तकनीक की खोज, अहिंसक तरीकों से कलह शमन, सहकार का अर्थशास्त्र तथा स्वदेशी को आवश्यक स्थान देना होगा।

जिस समाज में आर्थिक शोषण होता है वह समाज अहिंसक नहीं है। अहिंसक समाज का आधार अशोषण है। अशोषण के लिये श्रम तथा स्वावलम्बन की चेतना और व्यवस्था का विकास, व्यवसाय में प्रामाणिकता तथा क्रूरता का वर्जन अनिवार्य है। अहिंसक समाज में कुछ विशेष प्रकार की हिंसा का सर्वथा वर्जन होना चाहिए, यथा– आक्रामक हिंसा, निरपराध व्यक्तियों की हत्या, भ्रूण हत्या, जातीय घृणा, छुआछूत आदि का व्यवस्थागत निषेध। साम्प्रदायिक अभिनिवेश, मादक वस्तुओं का सेवन तथा प्रत्यक्ष हिंसा को जन्म देने वाली रूढ़ियों और कुरीतियों का वर्जन भी आवश्यक है। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति का भी विकास करना चाहिये।

स्वच्छ राजनीति वह है जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन नहीं होता। जहां व्यक्ति और राष्ट्र का सम्बन्ध मात्र यान्त्रिक नहीं होता, वहां व्यक्ति की स्वतन्त्रता का मूल्यांकन किया जाता है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता आत्मानुशासित होती है, जो व्यक्तिगत विशेषताओं का संरक्षण है और वह राष्ट्र की समृद्धि की आवश्यक शर्त है।

केवल हिंसा की रोकथाम करना और विधि–व्यवस्था कायम रखना राजनीति का काम नहीं है। जीवन्त राजनीति का लक्ष्य है – व्यक्ति का हित और मानव कल्याण। व्यवस्था परिवर्तन के लिये संगठनात्मक प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिसमें अनुसन्धान, योजना, कार्य के लिये तैयार होना,

प्रचार, कार्य का प्रारम्भ, नेतृत्व आदि संगठन के विभिन्न पहलुओं के लिये प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है।

वस्तुतः जैन धर्म और अहिंसा एक तत्व के पर्याय जैसे ही है। **'मित्ती में सव्वभूएसु, वेरं मज्झं ण केण वि'** जैसे उदात्त सिद्धान्त की फलश्रुति दया, करुणा, प्रेम, सह–अस्तित्व एवं संवेदनशीलता जैसे सर्वोत्कृष्टता के सम्पादक/सम्पोषक तत्व इसी की छाया में पालथी मारे बैठे हैं। जैन धर्म की इस सांस्कृतिक विरासत ने यह अवबोध कराया कि –

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणवं घोरं, णिग्गंथा वज्जयंति णं।।
जह ते न पिअम दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं।
सव्वायरमुवउत्तो, अत्तोवम्मेण कुणसु दयं।।
जीववहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ।
ता सव्वजीवहिंसा, परिचत्ता अत्तका मेहिं।।

– **समणसुत्तं,** 148, 150–151

इस सांस्कृतिक विरासत ने प्राणिमात्र को एक ऐसा सात्विक आकाश प्रदान किया जहां वे सकून से श्वांस ले सकें, अपनी स्वतन्त्रता, अपनी अस्मिता पहचान सकें। जहां प्रत्येक जीवात्मा अपनी मानसिकता को मानवता के मापदण्ड पर माप सकें। ऐसे सैद्धान्तिक, सांस्कृतिक एवं व्यवहारिक मापदण्ड के उत्कर्ष का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निदर्शन **समणसुत्तं,** (153), इस गाथा में हुआ है –

रागादीणमणुप्पाओ, अहिंसकत्तं त्ति देसियं समए।
तेसिं च उप्पत्ती, हिसेत्ति जिणेहि णिदिठ्ठा।।

किन्तु दुर्भाग्य है कि अहिंसक व्यक्तित्व के निर्माण में हम बौने पड़ गये हैं। जिस अहिंसक व्यक्तित्व की बहुत बड़ी आवश्यकता आज सम्पूर्ण संसार अनुभव कर रहा है वहीं हम अपने कदम आगे बढ़ाने के बजाय पीछे लौटा रहे हैं और हम इतने पीछे पहुंच गये हैं कि वही वीभत्स वक्त हमारे समक्ष पुनः आ खड़ा हुआ है जिससे महावीर ने हमें उबारा था।

नित्य प्रति कितना लहू बह रहा है कत्लखानों में? कितनी मांगों का सिन्दूर, कितनी माताओं की गोदें उजड़ रही हैं, सम्पूर्ण विश्व में फैले अर्थवाद और आतंकवाद से? कितने ही अंजान–बेजुबान मारे–काटे–झोंके जा रहे हैं, चापलूस राजनीति के हथकण्डो से? कोई गणित है? कोई

हिसाब है? कितनी हजार चिताएं रोज जल–बुझ रही हैं, उन्हीं के धुंए से धरती और आकाश मानो ढक गया है।

अतः समय रहते सावधान होने की आवश्यकता है। इस आग को अहिंसा के शीतल जल से बुझाना होगा। पौराणिक किम्वदन्ती है कि 'शंकर प्रलय करते हैं' परन्तु आज का अणु बम महाशंकर बनकर नृत्य करने को तैयार है, कुछ नाच तो दिखा भी चुका है। भयंकर अस्त्रों का निर्माण, स्टार वार की कल्पना, सुरक्षा मुंह बाए ताक रही है। नक्षत्रीय – नाभिकीय युद्ध छिड़ने को व्याकुल है। ऐसे नाजुक दौर में विश्वशांति की स्थापना के लिये जैन धर्म की सांस्कृतिक विरासत – अहिंसा का महत्व और भी बढ़ जाता है। लड़–झगड़कर, हिंसा के बल पर चाहे जो कुछ मिल जाये, परन्तु सुख–शांति, सुकून से भरा आंगन एवं जीवात्मा का प्राणभूत तत्व धर्म कहीं–कभी भी नहीं मिल सकता है। जीवन में अहिंसा को जीवित रखने के लिये कुछ रचनात्मक सोच और चर्चाओं का आदान–प्रदान आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है। यह कार्य कर सकती है मन की शक्ति और हृदय की निर्मलता। ये बहुमूल्य वृत्तियां असम्भव को भी सम्भव बनाने का प्रचण्ड पौरुष अपने में अन्तर्गर्भित किये है।

आज का सुशिक्षित माना जाने वाला व्यक्ति स्वार्थ–मूर्ति बनकर अपनी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की पूर्ति के निमित्त क्रूर से क्रूरतम कर्म करता हुआ मानव की आकृति में राक्षस के समान प्रतीत होता है। बाहर से तो वह ईश्वर का बड़ा भक्त बनता है किन्तु वस्तुतः वह निकृष्ट हिंसात्मक कार्य करता रहता है। उसकी दुर्दान्त हिंसक प्रवृत्ति विश्व में 'रौरव' नरक जैसी हो जाती है। आज विज्ञान के प्रकाश में भी क्रूरता एवं अन्धविश्वास का अन्धकार दूर नहीं हो सका है। वर्तमान यान्त्रिक विकास और विलासिता के युग में अपनी झूठी शान–शौकत बढ़ाने के लिये जो आकर्षक सामग्री विश्व के बाजार में बिकने आती है उससे अगणित जीवों का घात हुआ करता है। रोगी व्यक्तियों को तन्दुरुस्त बनाने के लिये अगणित जीवों का वध करके उनका खून–मांस आदि दिया जाता है। वर्तमान युग में हिंसा की वृद्धि होते हुए भी कतिपय महानुभाव अहिंसा के प्रदीप को विशेषतया दैदीप्यमान बनाते रहते हैं। सम्प्रति जैनधर्म सम्मत अहिंसा का प्रशिक्षण ही विश्व में वास्तविक शांति की स्थापना कर सकता है।

विश्वशांति के निमित्त व्यक्ति को आत्म–विजय का मार्ग अपनाना होगा। त्याग और सेवा का आदर्श भारतीय संस्कृति और चेतना का मूल मार्ग है। सम्प्रति स्वार्थ–साधना में आकंठ निमग्न बहुसंख्यक व्यक्ति अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, लिप्साओं और आवश्यकताओं को 'आकाश की भांति अनन्त' बनाकर स्वयं को बारूद के ढेर पर बैठाते जा रहे हैं। विश्व में शांति, अहिंसा के सिद्धान्त को आत्मसात करने से ही सम्भव है। इसके लिये प्राणी को अपनी अधोमुखी प्रवृत्तियों को ऊर्ध्वगामिनी बनाने का उद्योग करना पड़ेगा। जैसे पानी सामान्य रूप से नीचे की ओर जाता है, उसे ऊंचे स्थान पर भेजने के लिये विशेष उद्योग करने की आवश्कता होती है, उसी प्रकार जीव की प्रवृत्ति को समुन्नत बनाना श्रम और साधना के द्वारा ही सम्भव होगा। विश्वशांति और प्राणिमात्र के संरक्षण एवं परित्राण के लिए एकमात्र साधन अहिंसा ही है। इसी तथ्य को केन्द्र में रखकर महान चिन्तक आचार्य शुभचन्द्र (दसवीं शताब्दी) ने अहिंसा का विश्लेशण करते हुए कहा है –

यत् किंचित् संसारे शरीरिणां दुःख–शोक–भय–बीजम्।
दौर्भाग्यादि–समस्तं तद्धिंसा–सम्भवं ज्ञेयम्।।

अर्थात्, विश्व में जीवों के दुःख, शोक और भय के बीज स्वरूप दुर्भाग्य आदि जो दिखाई पड़ता है, वह सब अशांति के मूल कारण हिंसा से पैदा होता है। इसीलिये 'अहिंसा' की मधुरता और महिमा के गीत सर्वत्र गाये जाते हैं –

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वथा।
अक्लेशजननं प्रोक्ता ह्यहिंसा परमर्विभिः।।

अर्थात् सभी जीवधारियों में मन–वचन–काय से सब प्रकार का क्लेश नहीं उत्पन्न करने को महर्षियों ने 'अहिंसा' कहा है।

समस्त–व्रत–समूहानामहिंसा जननी मता।
खनि–विश्वगुणानां च धरा धर्मतरोः परा।।

अर्थात्, 'अहिंसा' सभी व्रतों, धर्मसमूह आचार पद्धति की माता मानी गयी है, सभी गुणों की खदान मानी गयी है और धर्मरूपी वृक्ष की उत्तम भूमि मानी गयी है।

किन्त्वहिंसैव भूतानां मातेव हितकारिणी।
तथा रमयितुं कान्ता विनेतुं च सरस्वती।।

अर्थात् हिंसा दुःख का कारण है किन्तु अहिंसा ही माता के समान प्राणियों का हित करने वाली है। अहिंसा रमण (प्रसन्न) करने के लिये स्त्री और सुसंस्कार अर्थात् शिक्षा प्रदान करने के लिये सरस्वती है।

तपः श्रुत–यम–ज्ञान–ध्यान–दानादि–कर्मणाम्।
सत्य–शील–व्रतादीनामहिंसा जननी मता।।

अर्थात्, तप, शास्त्र–ज्ञान, संयम, ज्ञान, ध्यान तथा दानादि कर्म और सत्य, शील तथा व्रत आदि की माता–अहिंसा' मानी गयी है। वस्तुतः अहिंसा का मूलाधार विवेक है। वर्तमान जगत से लेकर मोक्षमार्ग तक की आधारभूमि 'अहिंसा' ही है। इसीलिये विचारकों ने कहा है –

अहिंसैव जगन्मातहिंसैवानन्द–पद्धतिः।
अहिंसैव गतिः साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती।।
अहिंसैव शिवं सूते दत्ते च त्रिदिव–श्रियम्।
अहिंसैव हितं कुर्याद व्यसनानि निरस्यति।।

अर्थात्, अहिंसा ही जगत की माता है, अहिंसा ही आनन्द की पद्धति है, अहिंसा ही उत्तम गति है, अहिंसा ही स्थिर रहने वाली लक्ष्मी है, अहिंसा ही मोक्ष प्राप्त कराती है, अहिंसा ही स्वयं को लक्ष्मी देती है, अहिंसा ही हित करती है और अहिंसा ही व्यसनों–संकटों को नष्ट करती है।

वस्तुतः शांति के मार्ग में बाधक दो ही दोष हैं –काम और क्रोध। विश्व के समस्त राष्ट्र विश्वशांति के पथ में सर्वाधिक ताकतवर काम और क्रोध, इन दोनों दोषों को सबसे पहले दूर करें। उन्हें दूसरों का धन–वैभव प्राप्त करने की अभिलाषा भी त्याग देनी चाहिये और आपस में साम्यभाव स्थापित करना चाहिये। यदि हम लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि दुर्गुणों का परित्याग कर "वसुधैव कुटुम्बकम्" (सम्पूर्ण पृथ्वी एक कुटुम्ब है) इस आदर्श को आत्मसात करें तो सम्पूर्ण विश्व में शांति स्वयंमेव दृष्टिगोचर हो सकेगी। एतदर्थ हमें प्रतिदिन भावना करनी चाहिये –

'होवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा'

तथा

सर्वे कुशलिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्व भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।।

28, 'सरोज सदन', सरस्वती कॉलोनी, दमोह –470661 (म.प्र.)

✧✧✧

श्रमण संस्कृति में राष्ट्रीयता : विरोधी हिंसा को मान्यता

—डॉ. प्रेमचन्द जैन

राष्ट्रीयता का अर्थ मात्र भौगोलिक या राजनीतिक व्यवस्था नहीं है बल्कि राष्ट्रीयता की भावना के लिये उसके नागरिकों में स्वदेश प्रेम, देश के कानूनों का पालन, देश की रक्षा के भाव, संविधान के प्रति निष्ठा, उसमें वर्णित मूल उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता, देश की सांस्कृतिक परम्पराओं, पारस्परिक विश्वास, अपनी भाषा एवं भाषाओं से लगाव, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग, आदि का होना आवश्यक है।

राष्ट्रीयता का प्राण शासकीय कानूनों का सम्मान है। स्वतंत्र नागरिकों द्वारा देश के कानूनों का स्वेच्छा से पालन किया जाना चाहिए अर्थात् नागरिक स्वभाव से ही राज्य—कानूनों का पालन करें। श्रमण संस्कृति के साहित्य में इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। राज्य ने जिन कृत्यों को अपराध घोषित किया है लगभग उन सभी कृत्यों को श्रमण संस्कृति में निषिद्ध किया गया है। जैन धर्म/श्रमण संस्कृति में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पांच पाप प्रचारित किये गये हैं, जिनसे बचने के लिये गृहस्थों के लिए पांच अणुव्रत और साधुओं/साध्वियों के लिए वे ही महाव्रत निर्देशित हैं, जो उन्हें तथाकथित अपराधों से बचाते हैं।

तत्त्वार्थसूत्र (मोक्ष शास्त्र) में सूत्र रूप से प्रायः सभी जैन सिद्धान्त वर्णित हैं। श्रावकों हेतु पांच अणुव्रतों के साथ अन्य 12 व्रतों का भी विधान है। पांच अणुव्रत हैं, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। कानून की दृष्टि से 12 व्रतों में 'अनर्थ दंड व्रत' का बड़ा महत्व है। इसके अन्तर्गत अपध्यान अर्थात दूसरों का बुरा विचारना आदि आता है जिन सबसे हिंसा का दोष लगता है।

तत्त्वार्थ सूत्र में अहिंसाणुव्रत के 5 अतिचार गिनाए गये हैं, यथा—

"बंध—वध—च्छेदाति भारा रोपणान्नपाननिरोधाः

बंध – किसी भी प्राणी को रस्सी, सांकल इत्यादि से बांधना या पिंजरे में बन्द कर देना है जिससे वह अपनी इच्छानुसार न जा सके। व्रतियों को इससे बचने की सलाह है।

वध – लाठी, कोड़े इत्यादि से किसी जीव को पीटना है।

छेदन – पूंछ, नाक, कान आदि अवयवों को छेदना है।

अति भारारोपण – शक्ति और मर्यादा का विचार न करके अधिक बोझ लादना है।

अन्न पान निरोध – किसी भी प्राणी को समय पर भोजन–पानी नहीं देना।

यद्यपि उक्त कृत्य मूल रूप से कानून का उल्लंघन नहीं है किन्तु जैन धर्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म हिंसा से बचने–बचाने का प्रावधान करता है। हिंसा तो कानूनी अपराध है ही।

जैन धर्म के अनुसार सत्याणुव्रत तभी पूर्ण रूपेण क्रियान्वित होता है जब उसके अतिचारों से भी बचा जाये। **तत्त्वार्थ सूत्र** में निम्नलिखित अतिचार दिये गये हैं –

1 मिथ्योपदेश – अर्थात् झूठा और अहितकर उपदेश देना, झूठी गवाही देना आदि।

2 रहोभ्याख्यान – स्त्री–पुरुष के द्वारा एकान्त में की गई क्रिया को प्रकट कर देना।

3 कूट लेख क्रिया – झूठे दस्तावेज बनाना, किसी के दबाव में आकर दूसरों को फंसाने के लिये झूठी बात लिख देना।

4 न्यासोपहार– किसी की रखी हुई धरोहर से कम देना। यदि वह भूल जाये तो धरोहर नहीं लौटाना, या वह भूल से धरोहर को कम मांगे तो उतनी ही देना, शेष बचा लेना, और

5 साकार मंत्र भेदा – चर्चा से वार्ता से मुखाकृति आदि से देख कर और उससे दूसरे के मन की बात जानकर उसकी बदनामी हेतु प्रकट कर देना।

अचौर्याणुव्रत के भी पांच अतिचार बताए गये हैं, यथा –

1 स्तेन प्रयोग –चोर को चोरी करने की प्रेरणा देना, उसकी सराहना करना और चोरी करने के उपाय बताना आदि।

2 तदाहृतादान – चोरी का माल खरीदना।

3 विरुद्ध राज्याति क्रम – राज्य–नियम के विरुद्ध कार्य करना, टेक्स की चोरी करना, चोर बाजारी करना आदि।

4 हीनादिक मानोन्मान – अर्थात् कम तौलना।

5 प्रतिरूपक व्यवहार – अर्थात कीमती वस्तु में कम कीमत की वस्तु मिलाकर उसे असली के भाव बेचना। नकली घी, नकली मोती, आदि असली बताकर बेचना। यह सभी कृत्य राज्य द्वारा घोषित अपराध हैं।

श्रमण संस्कृति में इन सबसे बचने का प्रावधान है। **'समणसुत्तं (जैन गीता)** में भी उक्त सभी प्रावधानों के सम्बन्ध में कथन हैं।

श्रमण संस्कृति की शिक्षा : राष्ट्र की संप्रभुता की रक्षा

संप्रभु राज्य की पहचान है उसके नागरिकों द्वारा कानूनों का स्वेचछा से पालन किया जाना तथा अन्य संप्रभु राज्यों द्वारा उसकी संप्रभुता एवं आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाना। यहां यह उल्लेखनीय है कि भारत ने कभी भी किसी भी राष्ट्र पर आक्रमण नहीं किया किन्तु अन्य राज्यों द्वारा किये गये आक्रमणों का मुंहतोड़ जवाब दिया। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है। अतः कभी–कभी अपनी संप्रभुता की रक्षार्थ शस्त्र ग्रहण करने पड़ते हैं जिसमें हिंसा होती है जबकि श्रमण संस्कृति अहिंसा प्रधान संस्कृति है। **वरांग चरित** के अनुसार वरांग श्री वरदत्त केवली का उपदेश श्रवण कर अहिंसा व्रत तो अंगीकार करते हैं किन्तु राज्य की रक्षा में होने वाली हिंसा की छूट ले लेते हैं। महत्वाकांक्षी श्रेष्ठ क्षत्रिय पराक्रम के अभिमान में उद्दंड हो जाते हैं, फलतः अपनी प्रभुता बढ़ाने के लिये आपस में आक्रमण करते हैं जिसके निमित्त से पर्याप्त हिंसा होती है; अतएव मर्यादा रक्षा के लिये युद्ध की एक हिंसा को छोड़ शेष सब प्राणियों पर मेरा दयामय भाव हो गया है।

देश की अखंडता बनाए रखने के सम्बन्ध में जैन राजाओं द्वारा अपने राज्यों की संप्रभुता बनाए रखने की दृढ़ इच्छा–शक्ति रखने का उपदेश है। आचार्य सोमदेव ने राष्ट्रीयता की रक्षा हेतु निम्न सूत्र दिया है–

समस्त पक्षपातेसु स्वदेश पक्षपातो महान।

अर्थात्, समस्त पक्षपातों में अपने देश का पक्षपात महान है।

एक अन्य सूत्र में उन्होंने कहा है कि राजा की समस्त नीति और पराक्रम की सार्थकता अपनी भूमि की रक्षा और वृद्धि के लिए होती है, न कि भूमि के परित्याग के लिये।

अपने देश की रक्षा हेतु शस्त्र ग्रहण करने के सम्बन्ध में आचार्य सोमदेव सूरि **यशस्तिलक चम्पू** काव्य में कहते हैं –

'यः शस्त्रवृत्ति समरे रिपुः स्याद्या या कण्टको वा निज मण्डलस्य
अस्त्रापित तत्रैव नृपाः क्षिपन्ति न दीन–कानीन शुभाशयेषु।

अर्थात्, नरेश उस पर प्रहार करता है जो शस्त्र लेकर युद्ध में मुकाबला करता है अथवा जो अपने मण्डल का कण्टक होता है। वह दीन, दुर्बल अथवा सद्भावना वाले व्यक्तियों पर शस्त्र प्रहार नहीं करता। इन उदाहरणों

से सिद्ध है कि जैन दर्शन और साहित्य में अपने राज्य के संरक्षण अर्थात् राज्य की संप्रभुता का सिद्धान्त विद्यमान है।

संविधान के प्रति निष्ठा : उसमें वर्णित मूल उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता

भारतीय संविधान के मूल उद्देश्य –

(अ) भारत एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य है जिसका तात्पर्य है कि राज्य व शासन के संचालन में जनता की इच्छा का सम्मान तथा उसकी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भागीदारी। सरकार का स्वरूप प्रतिनिधित्वपूर्ण तथा उत्तरदायी होना जरूरी है। लोकतंत्र में राज्याध्यक्ष वंश परम्परागत न होकर जनता द्वारा निश्चित काल के लिये निर्वाचित होता है। प्राचीन भारत में यद्यपि छोटे–छोटे राज्य होते थे जिन पर वंश परम्परागत शासन होता था किन्तु राजा के परामर्श के लिये एक मंत्री परिषद होती थी तथा 'पौर–जनपद' के रूप में प्रजातांत्रिक संस्थाएं भी थीं जिनमें सभी वर्गों के प्रतिनिधि रहते थे जो राज्य कार्यों, एवं राज्य की विधियों आदि में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते थे। कतिपय राज्यों में गणराज्य की भी व्यवस्था थी, जैसे कि ई.पू. छठी शताब्दी में वृज्जिगण राज्य था जो आठ कुलों का संघ था, जिसमें वैशाली के लिच्छवि, विदेह और ज्ञातृक (नाथ वंश) वृज्जि आदि महत्वपूर्ण थे, राजकार्य एक परिषद द्वारा होता था जहां सभी निर्णय सामूहिक रूप से लिये जाते थे। प्रत्येक ग्राम प्रमुख (राजा) इस परिषद के सदस्य होते थे। वृज्जि संघ में सात हजार सात सौ राजा होते थे जो ग्राम के प्रायः अनुभवी व्यक्ति ही होते थे। वे परस्पर मिल कर राज्य कार्य करते थे। उनकी बैठकें होती थी। सात सौ सात राजा, इतने ही उपराजा, इतने ही सेनापति और इतने ही भाण्डागारिक होते थे। सभागार में इन सदस्यों की बैठकें हुआ करती थीं। श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक **'प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था और राज्य शास्त्र'** में **'महावीर निव्वाणसुत्त'** नामक सूत्र ग्रन्थ को उद्धृत कर वृज्जिसंघ की गणतंत्रात्मक पद्धति का उल्लेख किया है। कौटिल्य एवं पाणिनी ने भी वृज्जिसंघ का उल्लेख किया है।

श्रेणिक पुराण में भी अत्याचारी राजा के स्थान पर धर्म–परायण राजा को राज्य देकर जनता के प्रतिनिधियों द्वारा नये राजा का अभिषेक करने का उल्लेख है। **वरांग चरित** में भी जनता के प्रतिनिधियों शिल्पी,

व्यवसायी आदि 18 श्रेणियों के मुखियों द्वारा सबसे पहले राज्याभिषेक करने का वर्णन है, बाद में मंत्री, सामंत, श्रेष्ठ भूपतियों, अमात्यों आदि के द्वारा भी अभिषेक किया गया।

(ब) भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है जिसका अर्थ धर्म विरोधी या अधार्मिक होना नहीं है। संविधान सभा में श्री एच.ही. कामथ ने कहा था– "When I say that a state should not identify itself with any particular religion, I do not mean to say that a state should be antireligious or irreligious. We have certainly declared India to be a secular state, but to my mind a secular state is neither a Godless state nor an irreligious or antireligious state."

धर्म निरपेक्षता से तात्पर्य है कि राज्य का कोई विशेष राजधर्म नहीं होगा। वह सभी धर्मानुयायियों से समान व्यवहार करेगा, किसी से राग–द्वेष नहीं होगा और न पक्षपात होगा।

"धर्म निरपेक्षता मूलतः एक नकारात्मक अवधारणा है, यद्यपि सकरात्मक दृष्टि से यह सभी धर्मानुयायियों, धार्मिक स्थानों, संस्थाओं आदि के प्रति समान व्यवहार की अपेक्षा करती है और उन्हें पूजा, अर्चना, विश्वास, धार्मिक संस्थाओं के प्रबन्ध आदि के क्षेत्र में स्वतंत्रता प्रदान करती है। नकारात्मक रूप से यह राज्य को धार्मिक मामलों में सक्रिय भाग लेने अथवा उनमें हस्तक्षेप करने से वर्जित करती है, तथा उसे व्यक्ति–व्यक्ति के बीच धर्म, जाति, नस्ल, मूलवंश, लिंग आदि के आधार पर भेद–भाव करने से रोकती है।"

श्रमण संस्कृति धर्म के मामले में बड़ी उदार है। यहां हमें सच्ची धर्म निरपेक्षता के दर्शन होते हैं। वस्तुतः धर्म सहिष्णुता ही सच्ची राष्ट्रीय भावना है, क्योंकि आज सबसे बड़ी समस्या जातिगत साम्प्रदायिकता, ऊंच–नीच, गरीब–अमीर में भेद–भाव से निपटना है। इस विषय में जैन धर्म अति उदार है। जैन कोई जाति नहीं, अपितु जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है उनके ही अनुयायी जैन हैं।

जैन साहित्य, जैन कथा कोषों एवं पुराणों में जैन धर्म की उदारता के उदाहरण भरे पड़े हैं पापी से पापी, दुराचारी, व्यसनी व्यक्ति भी धर्म के सिद्धान्तों अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह को अपने आचरण में उतार कर अपना उद्धार कर सकता है।

जैन धर्म के अनुसार –

शूद्रोअप्युपस्कराचार वपुः शुद्धयास्ति तादृशः

जात्मा हीनोअपि कालादि–लब्धैह्यात्मस्ति धर्म भाक।।

अर्थात्, कोई शूद्र भी है यदि उसका रहन–सहन स्वच्छ है जो मद्यादिक का सेवन नहीं करता है और जो शरीर की शुद्धिपूर्वक भोजन करता है वह वर्गहीन शूद्र भी धर्म श्रवण का अधिकारी है क्योंकि उसकी आत्मा यद्यपि जाति से हीन है तथापि काल लब्धि आदि के प्राप्त होने पर वह धर्मधारक हो सकता है।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जैन धर्मानुयायियों ने कभी भी धर्मान्ध होकर अन्य धर्मावलंबियों पर अत्याचार तो दूर की बात है, उन्हें बहला–फुसला कर जैन बनाने का प्रयास भी नहीं किया। जैन धर्म में व्यक्ति तो क्या प्राणिमात्र (इतर प्राणी) से जबरदस्ती करना वर्जित है। किसी पर दबाव डालना, उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करवाना सूक्ष्म हिंसा में आता है, इसलिये जैन धर्म में धर्मान्धता को कोई प्रश्रय नहीं है।

(स) भारत एक समाजवादी राज्य है अर्थात् समाज की भौतिक व आर्थिक शक्तियों का संगठन इस प्रकार किया जाये कि उन पर मानव शक्तियों द्वारा नियंत्रण न हो। समाजवाद राजनीतिक कम आर्थिक अधिक है जिसका मुख्य उद्देश्य समाज में आर्थिक समानता और सामाजिक व्यवस्था में समानता लाना है। ऊंच–नीच, गरीब–अमीर के भेद–भाव को यथाशक्ति यथासम्भव दूर कर पारस्परिक सद्भाव स्नेह और मिलजुल कर समाज की समस्याओं को हल करने में अपना सहयोग देना है, ताकि व्यक्ति की आर्थिक–विपन्नता से उसमें हीनता के भाव न आने पायें, और वह अपना जीवन सम्मान पूर्वक निर्वाह कर सके।

अपरिग्रहवाद : जैन दर्शन का उत्कृष्ट समाजवादी सिद्धांत है। राज्य समाजवाद संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान द्वारा प्राप्त करना चाहता है जबकि जैन धर्म के सिद्धान्त में इस समाजवाद को हृदय परिवर्तन के माध्यम से प्राप्त करना है। परिग्रह–परिमाणव्रत या अपरिग्रह वास्तव में आर्थिक समानता का ही परिचायक है। अपरिग्रह का सीधा–साधा अर्थ है आवश्यकता से अधिक वस्तुओं, धन–धान्य, भोग–उपभोग सामग्री का संचय नहीं करना तथा मन, वचन–काय से उनमें ममत्व बुद्धि नहीं रखना।

(द) संविधान में प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक और

राजनीतिक न्याय प्रदान किया गया है, जैन धर्म में इसकी व्यवस्था पहले से ही है। जैन दर्शन में व्यक्ति ही नहीं अपितु प्रत्येक प्राणी को समानता उपलब्ध है। इतर से इतर प्राणी को भगवान बनने का अधिकार है यदि वह तदनुसार आचरण करे। धार्मिक आचरण द्वारा ही व्यक्ति राग–द्वेष–कषाय की मनोवृत्ति पर अंकुश लगा सकता है ताकि व्यक्ति–व्यक्ति के बीच भेद–भाव की खाई न रहे। अमितगति द्वारा प्रणीत **सामायिक पाठ** का पहला पद है– सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं,

क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तो
सदा ममात्मा विद्धातु देव।।

अर्थात् सब जीवों से मैत्री भाव हो, गुणी जनों के मिलन से हर्ष हो, जो जीव क्लेषमय हैं उन पर कृपाभाव हो, और विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ भाव हो – इन्हीं गुणों का मेरी आत्मा सदैव ध्यान करें।

जैन दर्शन में आर्थिक न्याय का उपाय संयम को ही बताया गया है जिसका स्वरूप परिग्रह परिमाण और अपरिग्रहवाद में निहित है।

राजनीतिक न्याय से तात्पर्य है कानूनों का समान संरक्षण और कानून के सामने समानता (Equality before law and equal protection of law)। **महादेवी शांतला** नामक उपन्यास में महाराज विष्णुवर्धन के मुख से कहलाया गया है – "राष्ट्रहित में व्यक्तिवाद बाधक न बने। हमारे प्रधान जी जैन हैं, हमारे दामाद जैन हैं, जैन शैव और वैष्णव कन्याओं से हमारा पाणिग्रहण हुआ है। हमारे दण्डनायकों में शैव, वैष्णव, जैन सभी हैं। विविधता में एकता को हमारे राष्ट्र ने चरितार्थ किया है।"

(य) भारतीय संविधान में विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता दी गई है। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक जीव/द्रव्य, अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र है। पं. फूलचन्द शास्त्री द्वारा लिखित **जैन तत्व मीमांसा** की भूमिका में डॉ. अशोक कुमार जी ने लिखा है – Panditji considered the freedom of individual and self-reliance as the two wheels of Jainism. The freedom of individual here encompasses both the living and non-living entities.

जैन दर्शन में विचार–अभिव्यक्ति की छूट है। विचार समन्वय ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। जैन दर्शन में इस समस्या का सटीक,

सर्व–कालिक एवं सर्व–स्वीकार्य निदान है। 'स्याद्वाद पद्धति' अर्थात्, वस्तु किसी दृष्टि से इस प्रकार है अन्य दृष्टि से दूसरी प्रकार है अर्थात्, स्याद्वाद में एक दृष्टि को मुख्य किया जाता है उस समय दूसरी को गौण, पुनः पहली को गौण दूसरी को मुख्य। इस प्रक्रिया में तत्वज्ञान का अमृत प्राप्त हो जाता है। इस पद्धति में विचार वैषम्य या वाद–विवाद आदि को स्थान नहीं है। इन पंक्तियों के लेखक ने मार्च 1980 में **जैन मित्र** में प्रकाशित लेख में लिखा था, जो विचारणीय हैं – "आज शीत युद्ध के काल में स्याद्वाद ही शांति का अमोघ अस्त्र हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र में कहा गया है कि युद्ध का जन्म मानव मस्तिष्क में होता है और वह होता है उसके एकांगी विचारों के कारण। पूरे विश्व में राजनीतिक तनाव का जो भयावह वातावरण दिखाई देता है उसका मूल कारण आर्थिक अथवा सैनिक सम्पन्नता उतनी नहीं है जितनी वैचारिक विभिन्नता अथवा परस्पर विरोधी विचारधाराओं में दृढ़ एकांगी अन्ध–भक्ति।..... ऐसी स्थिति में सहिष्णुता की बहुत आवश्यकता है। मैं अपनी स्थिति में सही हूं, इस विचार के साथ–साथ कम से कम यह भी स्वीकार किये जाने की जरूरत है कि विशेष स्थितियों में अन्य भी सही हो सकते हैं। "मैं ही सही हूं' यह विचार ही सबसे अधिक खतरनाक है। यदि दुर्भाग्य से कभी तृतीय विश्व महायुद्ध हुआ तो वह इसी भूल के कारण हो सकता है।"

जैन धर्म व दर्शन में अहिंसा और जीव दया ही धर्म है। आचार्य सोमदेव ने **परमात्म प्रकाश** में कहा है कि अकेली जीवदया एक ओर है, शेष सभी क्रियायें जैसे दान, पूजा, तीर्थ यात्रा आदि का फल खेती करने सरीखा है (भविष्य में अन्न पैदा हो या न भी हो) पर जीवदया का फल चिन्तामणि रत्न की तरह है जो इच्छित वस्तु तत्काल देता है। जैन इतिहास में ऐसे सैंकड़ों उदाहरण उपलब्ध है जहां तथाकथित नीच व्यक्तियों, महिलाओं, पशुओं ने जैन धर्म के सिद्धान्त अपना कर अपना कल्याण स्वयं किया है जिससे सिद्ध है कि जैन संस्कृति में पूजा विश्वास एवं उपासना की पूर्ण स्वतंत्रता है। जैन धर्म का द्वार सभी के लिये खुला है। स्वयं जैनों में तेरहपंथ, बीसपंथ, निश्चयमार्गी, व्यवहारमार्गी, तारण पंथी, श्वेताम्बर – मूर्तिमार्गी व शास्त्रमार्गी, स्थानकवासी, गुजरात के कच्छी, राजस्थान के ओसवाल, मारवाड के खण्डेलवाल आदि अनेक उपासना पद्धतियां प्रचलित हैं। तिस परं भी जैन होने के नाते वे एक हैं। तीर्थंकरों को सब अपना इष्ट

मानते हैं। मुख्य जैन पर्वों में एक साथ भाग लेते हैं जैसे कि महावीर जयन्ती आदि सभी पन्थ एक साथ मिलकर मनाते हैं। अनेक स्थानों पर सकल जैन समाज संगठन भी बने हुए हैं।

हमारे संविधान में प्रतिष्ठा व अवसर की समानता उपलब्ध है। जैन दर्शन में प्रतिष्ठा की समानता और अवसर की समानता प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। जैन धर्म की मान्यता है कि प्रत्येक भव्य जीव में अनन्त शक्तियों का वास है, यहां तक कि उसमें स्वयं भगवान बनने की शक्ति है। जब साधना के बल पर सभी को भगवान बनने के अवसर प्राप्त हैं तो छोटे–मोटे पदों की क्या विसात? **परमार्थ प्रकाश** की भूमिका में प्रसिद्ध विद्वान डॉ. ए. एन. उपाध्ये लिखते हैं – "Souls should not be differenciated from each other; all of them are not really free from birth & death, as far as their spatial extension is concerned all of them are characterised by Darshan and Jnana. जैन दर्शन में प्राणिमात्र को समान अवसर प्राप्त है। वह चाहे तो अपने आचरण और भावों की शुद्धि के बल पर परम पद प्राप्त कर सकता है। इस तरह श्रमण संस्कृति में देश के संविधान के प्रति पूर्ण निष्ठा व्यक्त की गई है।

सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति निष्ठा : संस्कृति से ही व्यक्ति की प्रतिष्ठा है

किसी संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्व सांस्कृतिक परम्पराएं हैं। लोगों की वेश–भूषा, खान–पान, रहन–सहन आदि सभी में भारतीयता दिखनी चाहिये। वर्तमान के जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, श्री प्रमाण सागर जी महाराज, श्री सुधा सागर जी महाराज और श्री ज्ञान सागर जी महाराज भी जैन दर्शन के उपरोक्त सिद्धान्तों का अपने प्रवचनों और लेखों में विशेष रूप से उल्लेख करते हैं।

श्रमण संस्कृति सदैव राष्ट्र को समर्पित रही है। इसमें राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है।

Flat 202, Futuristic-Abbey Apts., BEL. Layout, 1st Block, Vidyaranyapura, BANGALURU-560097

✧✧✧

श्रुत पंचमी पर्व

– डॉ. (श्रीमती) संगीता शुक्ला

जय जय जिनवाणी नमो नमो
सर्व जग की कल्याणी नमो नमो
जिनवाणी तेरी कहानी नमो नमो

पंचतत्व से बना शरीरा, क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। जिस प्रकार मानव के लिये संतुलित भोजन महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार पांचों तत्वों का उचित समन्वय ही मानव में कल्याणकारी ऊर्जा का संवहन कर सकता है। दुर्भाग्य यह है कि चाहे भोजन हो या पर्यावरण, सभी प्रदूषित और असंतुलित बन रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी द्वारा निर्देशित पंच–महाव्रतों का स्मरण और उनका पालन अत्यंत सामयिक एवं अपरिहार्य सिद्ध हो रहा है। आत्म–चिन्तन, अध्यात्म–चिन्तन एवं समष्टि–चिन्तन कर तदनुसार समष्टि कल्याणपरक कर्म ही अभ्युदय एवं पर्यावरण संरक्षण के लिये उपयोगी हो सकते हैं और समाज में सकारात्मक ऊर्जा का संचार कर सकते हैं।

श्रुतपंचमी जैन धर्मानुयायियों द्वारा मनाया जाने वाला एक ऐसा पर्व है जो लोकाचार को नियंत्रित कर, कर्म एवं चिन्तन की महत्ता का प्रतिपादन करता है।

ज्येष्ठ शुक्ल की पंचमी तिथि जैन परम्परा में सदियों से मनाई जा रही है। इस दिन शास्त्र भण्डारों में रखे प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में हस्तलिखित प्राचीन मूल शास्त्रों को निकालकर, शास्त्रों को बांधने वाले वस्त्र (वेष्टन) आदि को बदल कर उन्हें नवीन वस्त्रों में सुरक्षित किया जाता है। भगवान की वेदी के समीप विराजमान कर उनकी पूजा की जाती है।

गुजरात प्रान्त में स्थित श्री गिरनार पर्वत की चन्द्रगुफा में परमपूज्य 108 श्री धरसेनाचार्य महाराज द्वारा श्री पुष्पदन्त जी एवं भूतबलि जी को ग्रन्थ लेखन की प्रेरणा दी गयी और दोनों ने धरसेनाचार्य की सैद्धान्तिक देशना को **षट्खण्डागम** नामक महान जैन परमागम के रूप में रचकर, ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी के दिन प्रस्तुत किया। अतः यह दिवस शास्त्र उन्नयन एवं संरक्षण का पर्व है। इसे **प्राकृत भाषा दिवस** के नाम से भी संबोधित किया जाता है। दुर्लभ जैन ग्रन्थ एवं शास्त्रों की रक्षा का यह महापर्व है। इस दिन जैन धर्मावलम्बी पीले वस्त्र पहन करके जिनवाणी की शोभा यात्रा भी निकालते हैं।

महावीर की पहचान **अहिंसा** से है और विश्व का भविष्य अहिंसा से है। आज हिंसा और आतंकवाद से घिरी दुनिया में अमन–चैन लाने के लिये अहिंसक शक्तियों को आगे बढ़कर प्रयास करना होगा। थोड़ी सी हिम्मत और ईमानदारी से दुनिया को स्वर्ग में परिवर्तित किया जा सकता है। छोटी सी चिंगारी ज्वाला बन जाती है। अहिंसा के दर्शन को समझने के लिये व्यापक दृष्टिकोण चाहिए। अहिंसा का मतलब यह कतई नहीं है कि दुश्मन गर्दन काटने आ रहा हो और व्यक्ति आंख बन्द करके बैठ जाये।

तीर्थंकर महावीर ने जीवमात्र के कल्याण के लिए एक विशिष्ट जीवन शैली एवं दर्शन की देशना की। उन्होंने कभी नहीं कहा कि मैं जैन हूं। वस्तुतः जिसने अपने मन, इंद्रियों, कर्म और कषायों को जीत लिया, वह जिन है। जो उसकी पूजा करता है वह जैन है। एक आचरण एवं स्वस्थ जीवन शैली को अपनाकर कोई भी प्राणी जैन हो सकता है। इसलिये धर्म, समाज और देश के लिये जो कुछ भी बन पड़े यथासम्भव, यथाशक्ति और यथाशीघ्र सहयोग करें। अपनी कमियों को केवल हम ही दूर कर सकते हैं, और कोई नहीं, सब केवल इसका फायदा उठाना जानते हैं या तटस्थ रहते हैं। सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र का परिपालन आवश्यक है। इस त्रिरत्न से विरत जन न जाने कितनी मिथ्या वस्तुओं को देवी–देवता का नाम दे उनकी अंधभक्ति कर अमूल्य जीवन गंवा देते हैं।

7 जून, 2019 ई., को श्रुतपंचमी पर्व का लखनऊ में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के अन्तर्गत जैन समाज द्वारा आयोजन किया गया। इसमें प्रातः श्रुत सरस्वती की पूजा की गई और **षट्खण्डागम** ग्रन्थ की भी पूजा की गई। प्राचीन ग्रंथ **धवला, जय धवला** और **महाधवला** की आराधना भी की गई। आगम में जिनवाणी को सरस्वती देवी का रूप कहा गया है अतः सुशोभित मंच पर देवी सरस्वती एवं ग्रंथों को आदर के साथ विनय पूर्वक स्थापित किया गया। स्थापित ग्रन्थों से वाचन भी किया गया। श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के अनुज श्री अजित प्रसाद जैन द्वारा सन् 1976 में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, के अंतर्गत एक सार्वजनिक शोध पुस्तकालय की स्थापना इसी श्रुत पंचमी के दिन की गई थी, अतः तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति से सम्बन्धित चारबाग, लखनऊ स्थित जैन धर्मशाला में इसे पुस्तकालय के स्थापना दिवस के रूप में भी मनाया जाता है।

कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को श्वेताम्बर जैन समाज **ज्ञान पंचमी** पर्व मनाता है। इसे 'सौभाग्य लक्ष्मी' और 'लाभ लक्ष्मी' भी कहते हैं। अंतराय कर्मो के कारण ज्ञान छिपा रहता है। ज्ञान के बिना

व्यक्ति सच और झूठ में अन्तर भी नहीं समझ सकता है। ज्ञान को द्वितीय सूर्य और तीसरी आंख भी कहते हैं। मान्यता है कि मूर्ख और अज्ञानी भी इस दिन पूजन से बुद्धिमान बन जाते हैं। इस दिन व्रत करने की भी परम्परा है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैन इसे विशेष रूप से मनाते हैं।

माघ महीने के शुक्ल पक्ष की पंचमी से ऋतुराज बसन्त का आरम्भ हो जाता है। इस दिन को **बसंत पचंमी** कहते हैं। यह दिन नवीन ऋतु के आगमन का सूचक है। इस दिन मां सरस्वती की पूजा की जाती है क्योंकि उनकी कृपा से ही विद्या, बुद्धि, वाणी और ज्ञान की प्राप्ति होती है। प्राचीन काल से ही बालकों का विद्यारम्भ संस्कार इसी दिन किये जाने की परम्परा रही है। छात्रों से विद्या प्राप्ति के लिए प्रायः निम्नलिखित श्लोक का पाठ भी प्रतिदिन किया जाना अपेक्षित रहता है –

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।।

गुरुग्रन्थसाहब के सम्मान में सिख सम्प्रदाय में **प्रकाशोत्सव** मनाया जाता है। **गुरु–ग्रंथ साहब** में भी कर्म करने की दार्शनिकता पर बल दिया गया है।

अहिंसा की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है जितनी तीर्थंकरों के समय थी। अहिंसा ही विश्व शान्ति का मूल मंत्र है। अहिंसा "वसुधैव कुटुम्बकम्" का प्रेरणा स्रोत भी है। सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र जीवन के मूल मंत्र हैं, "जियो और जीने दो" सिद्धान्त के आधार हैं। सकारात्मक चिन्तन, जीव मात्र के कल्याण हेतु स्वार्थ का त्याग और आत्मचिन्तन ही वर्तमान प्रदूषण का प्रतिरोध करने में सक्षम है। अतः शोर–शराबे, दिखावे और धन का अपव्यय करने वाले समारोहों का परित्याग कर जीव कल्याण हेतु किये जाने वाले प्रयत्नों का संवर्धन, संरक्षण एवं सामूहिक प्रचार ही वर्तमान की आवश्यकता है। पाठकों से यह निवेदन है कि वे युवा पीढ़ी में प्रतिदिन स्वाध्याय की आदत को सुनिश्चित करें और **श्रुत पंचमी** जैसे पर्वों को व्यापक स्तर पर मनायें।

श्रुत पंचमी, ज्ञान पंचमी, बसंत पंचमी और प्रकाशोत्सव धार्मिक ग्रन्थों के संरक्षण की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं और धार्मिक ग्रन्थों के संरक्षण एवं उनके स्वाध्याय के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं।

एसोसियेट प्रोफेसर, नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ;
शांतिपद्म, 2/552, विकास नगर, लखनऊ–226022

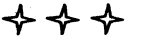

क्षमा का जीवन दर्शन

— प्रो. अनेकांत कुमार जैन

जैन परम्परा में पर्युषण–दशलक्षण महापर्व के ठीक एक दिन बाद एक महत्वपूर्ण पर्व मनाया जाता है, वह है – **क्षमा पर्व।** इस दिन श्रावक (गृहस्थ) और साधु दोनों ही वार्षिक प्रतिक्रमण करते हैं। पूरे वर्ष में उन्होंने जाने या अनजाने यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के किसी भी सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव के प्रति कोई भी अपराध किया हो तो उसके लिए उनसे क्षमा याचना की जाती है। साधक अपने दोषों की निंदा करता है ओर कहता है **'मिच्छामि दुक्कडं'** अर्थात्, मेरे सभी दुष्कृत्य मिथ्या हो जाएं। प्रायश्चित भी किया जाता है। इस प्रकार क्षमा के माध्यम से अपनी आत्मा से सभी पापों को दूर करके, उनका प्रक्षालन करके, सुख और शांति का अनुभव किया जाता है। श्रावक–प्रतिक्रमण में प्राकृत भाषा में एक गाथा है :

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती में सव्वभूएसु, वेरं मज्झं ण केण वि।।

अर्थात्, मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूं , सभी जीव मुझे क्षमा करें। मेरा प्रत्येक प्राणी के प्रति मैत्री भाव है, किसी के प्रति वैर भाव नहीं है।

क्षमा आत्मा का स्वभाव है, किन्तु हम हमेशा क्रोध को स्वभाव मान कर उसकी स्वीकारोक्ति और अनिवार्यता पर बल देते आये हैं। क्रोध को विभाव कहा गया है, स्वभाव नहीं। क्षमा शब्द *क्षम* से बना है जिससे क्षमता भी बनता है। क्षमता का मतलब होता है सामर्थ्य और क्षमा का मतलब है किसी की गलती या अपराध का प्रतिकार नहीं करना, सहन करने की प्रवृत्ति क्योंकि क्षमा का अर्थ सहनशीलता भी है। क्षमा कर देना बहुत बड़ी क्षमता का परिचायक है। इसीलिए नीति में कहा गया है 'क्षमावीरस्य भूषणं' अर्थात्, क्षमा वीरों का आभूषण है।

बहुत महत्वपूर्ण शब्द है 'सहन'। एक बार सुनने में ऐसा लगता है जैसे हमें कोई डरने को कह रहा है या दब कर चलने को कह रहा है। किन्तु बात वैसी है नहीं जैसा हम समझ रहे है। परिवार, समाज और राष्ट्र की पूरी व्यवस्था समन्वय और सहनशीलता के आधार पर टिकी है।

परिवार टूटा – इसका अर्थ है सह नहीं पाए, किसी सदस्य की सहनशीलता कमजोर हो गयी। दूसरी असहनशीलता अन्य सदस्यों की है कि वे एक की असहनशीलता को सह नहीं पाए। इसके पीछे स्नेह भाव छिपा हुआ है। हम जिसके प्रति प्रेम करते हैं उसकी हर गुस्ताखी को सह जाते हैं और जब प्रेम नहीं होता तो छोटी सी बात भी सहन नहीं होती। रहन–सहन में से अंततः न हटा दें तो बचेगा रह–सह और इसे पलट दें तो हो जायेगा सह–रह। इस सूत्र का अर्थ होगा कि जो सहे सो रहे और जो न सहे सो न रहे। सहनशीलता सह–अस्तित्व की सूचक है जो बिना क्षमा की क्षमता के संभव नहीं है। हम लोग वर्ष में अनेक दिवस मनाते हैं जैसे विश्व अहिंसा दिवस, विश्व योग दिवस, आदि उसी प्रकार हमें **विश्व क्षमा दिवस** भी अवश्य मनाना चाहिए।

अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

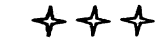

कैसे करें और मांगें क्षमा!

– श्रीमती रुचि अनेकांत जैन

क्षमा आत्मा का सर्वश्रेष्ठ गुण धर्म है। क्षमा अर्थात् Forgiveness हम सभी यदि अपनी दिनचर्या में शामिल कर लें तो कोई किसी का शत्रु नहीं रहेगा, सारे झगड़े समाप्त हो जायेंगे, जिन्दगी जीना सभी के लिए आसान हो जायेगा।

नई पीढ़ी नयी क्रियाएं पसंद करती है। यदि हम पुराने क्रियाकाण्डों में जान नहीं डाल पा रहे हैं तो हमें अब नये जमाने में नये किस्म के क्रियाकाण्ड मूलभावना के साथ विकसित करने चाहिए ताकि नयी पीढ़ी अपनी मूल संस्कृति को न छोड़े।

क्षमापर्व को मनाने के लिए कुछ आधुनिक ट्रैंड विकसित करने के बारे में हम सोचते हैं –

1 हम Friendship Day पर friendship-bands gift करते हैं, Valentine Day पर Gifts and Cards देते हैं। जिसे हम प्यार करते हैं उससे अनेक प्रकार से अपने प्यार का इजहार भी करते हैं। ठीक इसी प्रकार जिसके प्रति हमने अपराध किया है उससे क्षमा का निवेदन भी विविध प्रकार से करना चाहिए। पहले क्षमावाणी के सुंदर कार्ड्स और संदेश व कवितायें लोग अपने हाथों से बनाकर या छपवाकर देते थे किन्तु अब उसका स्थान सोशल मीडिया ने ले लिया है। इसमें ये पता ही नहीं होता कि व्यक्ति किससे और क्यों क्षमा याचना कर रहा है। हमने जो अपराध किये हैं उनमें से अधिकांश तो हमें ज्ञात हैं और जिसके प्रति किये हैं वो भी ज्ञात है। तब हमें उन अपराधों को कह कर उसकी आलोचना करनी चाहिए और जिसके प्रति किया है उससे मिलकर और कह कर भी क्षमा याचना करनी चाहिए। इसके साथ में कुछ ग्रन्थ या मंगल सामग्री उपहार स्वरूप देकर क्षमा याचना करें तो और अधिक प्रभाव पड़ सकता है। Forgiveness Day पर Wrist-band हम उन्हें दे सकते हैं जिनसे क्षमा याचना करनी है।

2 क्षमा पर्व को विश्व स्तर पर Forgiveness Day के रूप में मनाकर विश्व में भाांति और सद्भावना स्थापित कर सकते हैं।

3 हमें अपने बच्चों में भी क्षमा मांगने और दूसरों को क्षमा करने का भाव विकसित करना चाहिए। स्कूलों में, आस–पड़ोस में बच्चे छोटी–छोटी सी बात पर अन्य बच्चों को थप्पड़ मार देते हैं, मारपीट करने लग जाते हैं,

इससे बैर–भाव ज्यादा विकसित हो जाता है, तुरन्त बात को लड़ाई–झगड़े को खत्म करने का सबसे अच्छा तरीका है, माफ कर देना, माफी मांग लेना। संवाद के माध्यम से यह क्षमा करने का गुण हमारे प्रयासों से ही विकसित होगा।

4 आजकल कार्यालयों में बॉस के साथ तथा अन्य साथियों के बीच छोटी–बड़ी बात को लेकर मन–मुटाव हो जाते हैं, ऐसे में क्षमा मांग लेने पर सब कुछ ठीक हो जाता है। ऐसे में हम कुछ आधुनिक तरीके अपनाकर बाजार से कुछ उपहार जैसे कि पैन, डायरी ब्रेसलेट आदि पर forgiveness छपवा कर भी ऐसी चीजें वितरित कर सकते हैं।

5 यूनिवर्सिटी और कालेजों में रोज होने वाले झगड़ों से सभी परिचित हैं। ये झगड़े तुरन्त हल ना किये जाएं तो बड़ा रूप ले लेते हैं। आपसी मन–मुटाव को कम करने के लिए विद्यार्थी टीशर्ट, बैग्स आदि पर forgiveness छपवा कर एक दूसरे को गिफ्ट करें। आजकल टैटू का ज़माना है, तो उल्टे–सीधे टैटू न बनवाकर 'क्षमा' अर्थात् Forgiveness के टैटू बनवायें। ऐसा करने से आपस में प्रेम और सौहार्द बढ़ेगा। शिक्षण संस्थाओं में क्षमा पर्व पर भाषण, निबन्ध, नाटक आदि प्रतियोगिताएं करवा कर, एक दूसरे को मिठाई आदि खिला कर यह पर्व मनाया जा सकता है।

6 सार्वजनिक स्थानों पर सामूहिक प्रतिक्रमण करके पूरे भारतीय समाज को इसका महत्व बतलाना चाहिए।

7 यदि आप किसी फैक्ट्री, ऑफिस, कॉलेज या संस्था के मालिक हैं तो अपने फर्म आदि में स्टाफ के साथ मिलकर यह दिन उत्सव की तरह मनाएं।

इस प्रकार आपके मन में भी अनेक नये उपाय आते होंगे। आप उन्हें सभी को बताएं और सबसे बड़ी बात यह है कि सच्चे मन से क्षमा याचना करें, ताकि आपकी आत्मा शुद्ध हो सके और अगले का मन भी साफ़ हो सके।

ए 93/7ए, नन्दा अस्पताल के पीछे, छतरपुर एक्सटेंशन, दिल्ली–110074

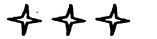

शंका–समाधान

गलत धारणाएं और सही समाधान

– श्री आदिकुमार भगवंतराव बंड जैन

विगत 21 दिसम्बर से 23 दिसम्बर 2019 के दौरान इन्दौर (म.प्र.) में विकास जी छावड़ा द्वारा आयोजित **गोम्मटसार कर्मकाण्ड शिविर** में मैंने भाग लिया था। उस शिविर के दौरान मेरी निम्नलिखित गलत धारणाएं दूर हुई :–

1 शंका – कदली घात बनाम अकाल मरण नहीं मानना –

समाधान – सर्वज्ञ भगवान के केवल ज्ञान में किसी भी जीव के भूज्यमान आयु के साथ उसके अकाल मरण की आयु भी झलकती है, जो कि भूज्यमान आयु से कम होती है। इसकी पुष्टि में आचार्य उमा स्वामी कृत **तत्त्वार्थ सूत्र** ग्रन्थ के अध्याय दो का सूत्र 53 दिया जा सकता है, जो इस प्रकार है –

'औपपादिकचरमोत्तमदेहा संख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।'

अर्थात्, उपपादजन्म वाले देव व नारकीय तथा चरमोत्तम देहवाले तीर्थंकर और असंख्यात वर्ष की आयु वाले भोगभूमिया जीव – इनका अकालमरण नहीं होता। मतलब कि इन जीवों के अलावा बचे हुए शेष जीवों का अर्थात् मनुष्य और तिर्यंचों का अकालमरण हो सकता है।

2 शंका – पुण्य और पाप की हेयता मानना –

समाधान – पाप तो सर्वथा हेय ही है। लेकिन पुण्य सर्वथा हेय नही है। बल्कि वह उपादेय भी है, जीव जब शुभोपयोग में होता है तब उसे पुण्य प्रकृतियों का बंध निश्चित रूप से होता है। पुण्य प्रकृतियों में तो तीर्थंकर नामक नाम कर्म की प्रकृति का भी अंतर्भाव है, जो कि मोक्षलक्ष्मी का वरदान देने वाली सबसे महान प्रशस्त प्रकृति है। लेकिन शुद्धोपयोग की अवस्था में पुण्य हेय होता है क्योंकि मोक्षमार्ग में पुण्य बाधक बनता है, लेकिन मोक्षमार्ग तक पहुंचाने वाला भी तो पुण्य ही होता है, अर्थात् पुण्य के उदय से ही संसार सुख की प्राप्ति होती है और पुण्य के उदय से ही मोक्षमार्ग भी प्राप्त होता है।

3 शंका – क्रमबद्ध पर्याय को मानना –

समाधान – संसारी जीवों के साथ घटित होने वाली सारी घटनाएं क्रमबद्ध पर्याय के अनुसार ही निश्चित रूप से होती है, ऐसा मानने पर आत्म कल्याण के लिए कुछ भी प्रयास करने की हमें जरूरत ही नहीं रहेगी और हम अपने आप ही क्रमबद्ध पर्याय के अनुसार अपना क्रम आने पर मोक्ष पद को प्राप्त कर लेंगे। लेकिन ऐसी धारणा रखने से हमारे द्वारा जिनेन्द्र भगवान का ही अवर्णवाद होगा, और जैन धर्म की अप्रभावना भी होगी क्योंकि सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि में अथवा किसी भी पूर्वाचार्य के किसी भी ग्रंथ में क्रमबद्ध पर्याय की चर्चा नहीं है और जो चीज अस्तित्व में ही नहीं है उसकी चर्चा सर्वज्ञ भगवान और कोई भी आचार्य करेंगे भी क्यों? जैसे कि तत्व सात ही हैं, आठवां तत्व है ही नहीं, तो फिर उसकी चर्चा भी नहीं।

✧✧✧

द्वारा प्रो. यू. जी. सरोदय, 336, मातृ वंदन, नवीन नंदन वन, नागपुर–440024

पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण की लत सभ्यता का वरदान या सांस्कृतिक संक्रमण का अभिशाप

— डॉ. लोकेश जैन

जब हम अपनी भारतीय संस्कृति जनित सुसंस्कृत एवं समृद्ध मर्यादाओं का उल्लंघन कर पश्चिमी संस्कृति के आकर्षण से अभिभूत होकर भोगवाद की अतिवादी व्यवस्थाओं के पीछे भागने का लोभ संवरण नहीं कर सके तब हमारी दशा कुछ इस तरह की हो गई कि 'न ही खुदा मिला, न विसाल–ए–सनम', न इधर के हुए न उधर के हुए। इस अतिवादिता में जब–जब हमने अपने संसाधनों का अस्तित्व खोया, अपने अंदर की शांति को खोया, कमाने की अनथक होड़ में न दिन देखा न रात, न नीति का विचार किया न अनीति का, न मानवीय मूल्यों की परवाह की, और न ही इस ठगनी माया का उपभोग करने के लिए समय ही नहीं बचा पाये। कैसी विडम्बना है कि हम इस अंधी दौड़ से रुकने का नाम नहीं ले रहे हैं। ऐसे में यह चिन्तन करना आवश्यक हो जाता है कि आधुनिकता के नाम पर पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण की लत हमारे लिए सभ्यता का वरदान है या सांस्कृतिक संक्रमण का अभिशाप है?

विज्ञान व तरक्की के जमाने में सम्पर्क बढ़े, भौतिक दूरियां सिमटी किन्तु सम्बन्धों की खाई निरन्तर गहरी होती चली गई। आज की युवा पीढ़ी के हाथों में एन्ड्रोइड मोबाइल है, उंगली सरकाते ही सारे जगत की सूचनाएं अलादीन के चिराग से भी अधिक द्रुतगति से पलक झपकते ही स्क्रीन पर हाजिर हो जाती है किन्तु नहीं दिखते तो वे जो बिल्कुल पास सटकर बैठे हुए कुछ अपने हैं, जिनकी सूनी आंखों में अभी भी कई बातें व मन साझा करने की हसरत भरी है, लेकिन सुसंस्कृत व आधुनिकता के दम्भी युवा तो उनके प्रेम व अपेक्षाओं का अहसास भी नहीं कर पा रहा जिन्होंने अपना सारा जीवन व सर्वस्व उसे काबिल बनाने में खपा दिया। वस्तुतः खता हमारी ही है कि हम काबिल होने के अर्थ नहीं समझा सके और बिना ब्रेक की द्रुतगामिनी गाड़ी में हमने उसे बैठा दिया। भला! बबूल का पेड़ बोकर आम खाने की आशा करना क्या किसी बुद्धिमत्ता का प्रतीक है? संस्कारों को समय पर नहीं दिया, संक्रमण की राह पर बढ़ने से रोका नहीं, बे–खौफ वर्ताव पर टोका नहीं, फिर वह कहां से आपके जज्वातों को समझेगा? वह सम्बन्धों को गणित के तराजू में ही रखेगा पश्चिम की

तरह। आप बेबसी में, संतान मोह में सब सह लोगे लेकिन प्रकृति नहीं, वह तो पठान की तरह सूद समेत ऋण वसूलेगी, तब आपके और युवा पीढ़ी के हाथों में निराशा व अफसोस के सिवा कुछ नहीं होगा।.

पाश्चात्य संस्कृति का एक विकृत पहलू अमीरी, व्यसन व फूहड़पन को फैशन व प्रतिष्ठा के रूप में प्रदर्शित करना है। इसके चलते आज हम सांस्कृतिक संक्रमण के ऐसे दौर में हैं जहां सभी कुछ भौतिक संसाधन होने पर भी हमारे पास अपना कहने को ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके चलते हम स्वयं को सुरक्षित, खुश तथा चिरन्तन सुखी महसूस कर सकें। भारतीय संस्कृति को निरी कर्मकांडी, अवैज्ञानिक व पिछड़ेपन की प्रतीक व्यवस्थाओं के रूप में महिमा मंडित किया जा रहा है, किन्तु इसमें जीवन शैली को परिशुद्ध बनाने वाले कई ऐसे व्यवहार शामिल हैं जिनके चलते व्यक्ति का तन–मन निरोगी रहता है, जैसे कि पानी छानकर पीना, प्रासुक जल का सेवन, रात्रि भोजन का त्याग, भक्ष्य–अभक्ष्य का विवेक, पथ्य–कुपथ्य का विचार, सात्विकता का विचार और आहार सम्बन्धी क्रियायें जैसे कि मौन रहना, शारीरिक शुद्धता, मानसिक शान्ति, अल्प आहरवृत्ति, साप्ताहिक उपवास आदि हमारी संस्कृति का हिस्सा बनी हैं। लेकिन आधुनिकता के दीवाने समाज ने इनकी उपेक्षा में ही सुख माना। पहले हम घर में खाते थे तथा निहार के लिए बाहर जाते थे, अब हम बाहर खाने में अपनी शान समझते हैं, जो नहीं खाते अथवा खा पाते उन्हें अपनी सभ्य सामाजिक जमात से बाहर कर देते हैं।

स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छता की आड़ में दिनों–दिन बढ़ती सांस्कृतिक प्रदूषण की समस्या पर्यावरणीय प्रदूषण से भी विकट होती जा रही है क्योंकि हर ओर धन–सम्पत्ति, सुविधाओं व खुलेपन के बावजूद हर डगर पर जीते जी मौत का मंजर खड़ा हुआ है। भावी पीढ़ी के जीवन की चिन्ता तो एक तरफ, वर्तमान पीढ़ी के अस्तित्व पर संकट के काले बादल छाए हुए हैं।

कर्म संस्कृति का अनुयायी साधक समाज आज निर्लज्ज आलसी जीवन व्यतीत करने में शान समझने लगा है, शार्टकट के साथ अनैतिक साधनों का बेशर्मी से बेफाम उपयोग को बुद्धिमत्ता बताया जा रहा है। भौतिकवादी व्यवस्था के अनुकरण के चलते व्यक्तिगत व सामाजिक रूप से धन के आधार से भौतिक सुख सुविधाओं का अम्बार तो बढ़ा किन्तु लक्ष्मी व श्री का आकार निरन्तर घटा। लक्ष्मी से हमारा आशय उन

उत्पादक वस्तुओं से है जो समाज की जरूरतों की संतुष्टि करती है, महज नफाकारकता (लाभ) के लिए जरूरतें खड़ी कर स्थापित कुदरती व सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था का शोषण नहीं करती।

सभी के सुख की मंगल कामना करने वाला समाज, सभी को साथ लेकर चलने वाला समाज आज व्यक्तिगत विकास व निजी स्वार्थपरता में इस कदर पगलाया हुआ है कि ईर्ष्या व द्वेष के वशीभूत होकर अपना कदम बढ़ाने के बजाए, दूसरे की टांग खींच कर आगे निकल जाने की फिराक में लगा रहता है, फिर उसकी सहायता करना तो दूर की बात। तुर्रा यह है कि सफलता के युग में निकटतम प्रतिस्पर्धा से येन–केन–प्रकारेण आगे निकलना आवश्यक है। लोग दूसरों की सफलता को देखते हैं, रास्तों को नहीं। ऐसा करने में असफल रहनेवाला वर्ग स्वयं को निराशा व हताशा के गर्त में डुबाकर अपनी निहित शक्तियों को निष्क्रिय बना लेता है। दोनों स्थितियां समाज के अस्तित्व के लिऐ घातक सिद्ध होती हैं।

आधुनिक मानव यंत्रों की इस मायावी दुनिया से इतना अभिभूत है कि शाश्वत श्रम की घोर उपेक्षा करने लगा है जबकि हकीकत यह है कि इसने व्यक्ति को निकम्मा बना दिया है। आज युवा जितना अधिक पढ़ जाता है, डिग्री धारण कर लेता है उतना ही शरीर–श्रम से दूर होता चला जाता है और इसी कसौटी पर सारे समाज को कसकर देखता है। मान–सम्मान व पहचान का विकृत पहलू इस आधुनिक यंत्र संस्कृति ने खड़ा किया है जिसके चलते व्यक्ति लकवाग्रस्त–सा हो गया है और अपनी क्षमताओं को भुलाता जा रहा है।

पश्चिमी सभ्यता से खर्च का अनुकरण करती भारतीय प्रजा खर्च व उपभोग के परिमाण को सभ्यता व विकास का पैमाना मान बैठी है, इससे संसाधनों का बेतहाशा शोषण हुआ, अनावश्यक उपयोग हुआ जिसने धरती मां के अन्तस्थल को खोखला कर डाला, जीवन प्रदाता पानी के स्रोतों को विषैला बना डाला, प्राणवायु को प्रदूषित कर डाला, किसके लिए? धन रूपी समृद्धि को पाने के लिए? अहो आश्चर्य! कि हम नाक बेचकर नथ पहनने में कैसी धन्यता का अनुभव कर रहे हैं? हमारे कामकाज की सोच तौर–तरीके ऐसे हैं जिसमें मूक प्राणियों के प्रति तनिक भी दया, करुणा व अहिंसा का भाव नहीं है।

विषय–भोगों की आकांक्षा तथा अनवरत चलने वाली महत्वाकांक्षा वर्तमान संस्कृति में विकास का प्रतिमान है, जो ऐसा नहीं कर पाता उसे

अक्षम अथवा रंक–दीन–हीन मान लिया जाता है। इन्द्रियों के भोग जितना भोगो उतना ही अधिक बढ़ते हैं, तृप्त नहीं होते, इसलिए भारतीय संस्कृति उनको भोगने के बजाय उन पर जय पाने के पुरुषार्थ को श्रेष्ठ बताती है। महत्वाकांक्षा रूपी लालच तो सुरसा राक्षसी के मुंह के समान विकराल है जिसमें अपने और समाज के जीवन के अमूल्य पल व प्रयास स्वाहा हो जाते हैं।

भारतीय संस्कृति जड़ता की नहीं, जड़ों से जुड़े रहने की वकालत करती है। वह बढ़ते कदम को रोकने की बात नहीं करती अपितु बढ़ने वाले कदम की दिशा–दशा की ओर विवेकपूर्ण चिन्तन की बात करती है। भारतीय संस्कृति की वकालत करने का आशय समय से पीछे लौटने का नहीं है और ना ही जमाने के साथ कदम से कदम न मिलाकर चलने की है अपितु समय रहते प्रकृति के संकेतों का सही मतलब समझ लेने की है ताकि पर्यावरणीय असंतुलन के दुष्प्रभावों व मानवीय मूल्यों के नैतिक पतन की स्थिति से बचा जा सके। आधुनिकता की आड़ में पनपती विकृत मानसिकता ने हमें कहीं का नहीं रखा, न हम दीन के रहे और न दुनिया के। इन अतिवादी व्यवस्थाओं की लोलुपता में हमने अपनी उन मर्यादायुक्त संयममय व्यवस्थाओं को बिना विचारे पलभर में तोड़ डाला।

भारतीय सांस्कृतिक दर्शन जीवन की समग्रता, 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' का अहिंसक दर्शन, जरूरत से अधिक संग्रहण के बजाय त्याग, समर्पण व संतोष के साथ जीवनयापन की सीख, संयम–व्रत–नियम आधारित अनुशासित ढंग से जीने का सलीका, धैर्य, सहिष्णुता, सद्भावना की धीमी लयबद्ध गति का माधुर्य, प्रकृति के साथ संसाधन–उपयोग की सयानी सूझबूझ का सुगम तालमेल, स्व की स्वार्थपरता व संकुचित मनोवृत्ति की जगह सर्व का कल्याणकारी मंगलमय सरोकार, हड़पनीति की जगह मिल–बांटकर खाने की तहजीब, ईर्ष्या–द्वेष के प्रतिकार की जगह दूसरों के प्रति संवेदना, करुणा व प्यार व सहयोग की उस तासीर को आयने की तरह हमारे सामने रखता है जो हजारों अवरोधों, आंधियो और तूफानों के बावजूद कायम है। अहिंसक संस्कृति सच्ची सभ्यता का प्रतिनिधित्व कर सकती है, मारकाट की हिंसक आधिपत्य जमाने वाली संस्कृति नहीं।

प्रो. ग्रामीण प्रबन्ध अध्ययन केन्द्र, गुजरात विद्यापीठ, रांधेजा गांधीनगर,गुज.

✧✧✧

जैन समाज की वर्तमान स्थिति – कुछ विचारणीय बिन्दु

– डॉ. अनिल कुमार जैन

सन्त चर्या

एक ओर जैन धर्मानुयायियों की संख्या में निरन्तर कमी होती जा रही है, वहीं दूसरी ओर **साधु–सन्तों की संख्या में निरन्तर वृद्धि** हो रही है। इस स्थिति को जैन धर्म की दृष्टि सें दुःखद मानें या सुखद – यह एक उलझन है। बहरहाल, इन्दौर से प्रकाशित पत्रिका **संस्कार सागर** के अगस्त 2018 के अंक में दिगम्बर सन्तों की सूची प्रकाशित हुई है। इसके आधार पर देशभर में लगभग 1600 पिच्छीधारी सन्त (आचार्य, मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक व क्षुल्लिका) हैं। कुछ नाम जुड़ नहीं पाये हैं, अतः हम मान सकते हैं कि लगभग 1700 पिच्छीधारी सन्त हैं। इनमें से 8 प्रतिशत आचार्य हैं। कुल लगभग 10 प्रतिशत एकल–विहारी हैं। एक रोचक बात यह है कि सन् 1930 के आस–पास कुल दिगम्बर सन्त 7 या 8 थे, यह संख्या सन् 1952 में 70 हो गई, 1999 में 790 थी और आज 1700 है। श्वेताम्बर साधुओं की संख्या तो कहीं बहुत अधिक है। लगभग दस वर्ष पहले उनकी संख्या 10 हजार थी, अब अनुमानतः यह संख्या 12 हजार होगी।

जैसे–जैसे सन्तों की संख्या में वृद्धि हो रही है वैसे–वैसे ही इनमें **आपस में प्रतिस्पर्धा** भी बढ़ गई है। हर कोई अपने को दूसरों से बेहतर दिखाने में लगा हुआ है। नित नए पदवीधारी आचार्य/साधु दिख जाते हैं। कई बार तो लगता है कि विद्वानों को संभावित पदवियों की एक पुस्तिका प्रकाशित कर देनी चाहिए जिससे किसी भी साधु को अपने नाम के आगे उचित टाइटिल खोजने में सहूलियत हो सके। प्रतिस्पर्धा मात्र उपाधि तक ही सीमित नहीं है, कई अन्य बातों में भी प्रतिस्पर्धा है, जैसे कि– टी.वी. पर आचार्य श्री/मुनि के कार्यक्रम दिखाये जाना, उसमें भी प्राइम–टाइम में दिखाया जाना। यदि किसी एक सन्त के चातुर्मास में एक करोड़ खर्च हुये तो दूसरा चाहेगा कि उसके चातुर्मास में उससे अधिक खर्च हो। यदि किसी एक को मिलने मंत्री, मुख्य मंत्री, प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति आये है, तो दूसरे की कोशिश रहेगी कि इनसे मिलने भी नेता आये। यदि किसी एक ने कोई एक मन्दिर बनवाया तो दूसरे का प्रयत्न रहेगा कि इससे भी बेहतर मन्दिर उनके स्वयं के नाम से बनें। कहां तक गिनायें अनेकों बातें हैं।

बात अब इससे भी आगे निकल गई है। अपने को दूसरों से अलग एवं श्रेष्ठ दिखाने के प्रयास में कोई अपना नया मत बना रहा है, कोई नया पंथ। कोई नया मंगलाचरण बना रहा है तो कोई नई आरती। कोई शास्त्रों की नई व्याख्याएं प्रस्तुत कर रहा है तो कोई नये शास्त्र लिख रहा है। मजे की बात तो यह है कि हर कोई आगम की दुहाई देता है। सामान्य जन क्या मानें, क्या न मानें, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा है। युवाओं में इस कारण धर्म के प्रति अरुचि होने लगी है।

दिगम्बर जैन परम्परा में निम्नलिखित **मंगलाचरण** प्रसिद्ध है। इसे प्रायः शुभकार्यों से पूर्व पढ़ा/लिखा जाता रहा है। यहां तक कि लोग शादी–विवाहों के अवसर पर भी कार्डों पर इसे प्रकाशित करवाते रहे हैं।

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणी।
मंगलम् कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।

विगत कुछ वर्षों से एक साधु वर्ग की ओर से प्रयास चल रहा है कि इस मंगलाचरण में 'कुन्दकुन्द' के स्थान पर 'पुष्पदन्त' कर दिया जाये। मुनि श्री सौरभ सागर जी तो मूर्ति प्रतिष्ठाओं के समय शिलालेखों में पुष्पदन्त के नाम के साथ ही पुष्पदन्त 'आम्नाय' तक लिखने लगे हैं। अभी हाल ही में उन्होंने **पुष्पदन्ताय नमः** पर संगोष्ठी भी करा दी जिसमें कुछ विद्वान भी एकत्रित हुये। पुष्पदन्त मुनि सौरभसागर जी के गुरु हैं। एक अन्य सरल स्वभावी आचार्य ने, मंगलाचरण ही बदल दिया और एक नये पंथ की स्थापना भी कर दी– उन्होंने निम्न मंगलाचरण दिया है –

मंगलम् भगवान अर्हन् मंगलं वृष्मो जिनः।
मंगलम् पूज्यपादार्यो जिनागम पंथ मंगलं।।

जहां एक ओर मंगलाचरण में परिवर्तन किये जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर **आरती** बदली जा रही है। जब भी पंच परमेष्ठी की आरती की बात आती है, प्रायः द्यानतराय जी की आरती **'इहविधि मंगल आरति कीजे'** गाई जाती है। इस आरती में छठवां पद निम्न प्रकार से है – छट्टी ग्यारह प्रतिमाधारी, श्रावक वन्दों आनन्दकारी।' अब कुछ विद्वान/प्रतिष्ठाचार्य इस पद को नहीं गाते हैं। छठवां पद इस प्रकार कर दिया गया है – 'छट्टी आरति श्री जिनवाणी, द्यानत बन्दौ आनन्दकारी'। हमने एक बन्धु से कहा कि आपने छठवी आरती छोड़ दी है और सातवीं को ही छठवीं बना दिया है, क्या आप भूल गये हैं? उन्होंने बताया कि भूले नहीं हैं, लेकिन 'ग्यारह प्रतिमाधारी' की आरती नहीं की जानी चाहिए। ऐसा करने पर दोष लगता

है। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम बचपन से तो यह आरती करते चले आ रहे हैं, अब दोष लग गया। हमने उनसे जिज्ञासावश पूछा कि आपको इसे न करने के लिए किसने मना किया है तो उत्तर मिला– मुनि महाराज जी ने।

पूजा पद्धतियों को देखकर लगता है कि जितने सन्त उतनी पूजा पद्धतियां। सूखे चावल, गीले चावल, अष्ट द्रव्य, खड़े होकर पूजन, बैठकर पूजन, अर्घ चढ़ाने के अलग–अलग तरीके और न जाने क्या क्या? मजे की बात यह है कि हर किसी के पास अपने–अपने तर्क हैं। इस बात पर किसी का जोर नहीं कि पूजा ऐसी करें जिसमें आरम्भ कम हो और भाव अधिक लगे।

पुराने समय में कई–कई सालों में एक **पंच कल्याणक प्रतिष्ठा** होती थी। फिर संख्या बढ़ने लगी, एक साल में एक या दो सुनने में आने लगी। अब तो एक साल में कितनी हो जाती हैं पता ही नहीं चलता। स्थिति यह है कि कुछ माह के अंतराल में एक ही शहर में दो–दो पंचकल्याणक हो जाते हैं। पहले पंचकल्याणक में आवश्यकता के अनुसार मूर्ति की प्रतिष्ठायें कराई जाती थी। यदि एक की आवश्यकता है तो एक, दो की आवश्यकता है तो दो। लेकिन धीरे–धीरे स्थिति बदलने लगी और चौबीसी का जमाना आ गया और आगे तरक्की हुई तो तीन चौबीसी रखी जाने लगीं। अब थोड़ा और आगे बढ़ गये, अब सहस्र (एक हजार) मूर्तियों की प्रतिष्ठायें प्रारम्भ हो गई हैं। कहने को तो हम जैन अपने को अल्पसंख्यक वर्ग में मानते हैं, लेकिन यहां हिसाब–किताब नहीं रखते हैं। यह जानने–सोचने का विचार नहीं करते कि इतनी प्रतिष्ठाओं से कितना लाभ और कितनी हानि होती है। मूर्ति बनने में स्थावर जीवों की कुछ तो हिंसा होती ही है। सामान्य दिनों में इतनी मूर्तियों की पूजा–प्रक्षाल करने वाला भी कोई नहीं मिलता हैं, तो क्या यह अवमानना नहीं है? पहले बताया जाता था कि मूर्ति बनने में जितना पाप लगता है इससे बहुत अधिक पुण्य मिलता है क्योंकि हो सकता है कि कभी किसी को इसे देखकर वैराग्य हो जाये। लेकिन क्या यह वैराग्य मात्र एक मूर्ति को देखकर नहीं हो सकता है?

प्रायः देखा गया है कि जहां पर भी एक चौबीसी या तीन चौबीसी होती है, लोग वहां मात्र एक परिक्रमा–सी लगा लेते हैं, मूर्तियों की तरफ ध्यान भी नहीं जाता है। सामान्य जन तो भोले हैं, लेकिन प्रतिष्ठा करवाने

वाले मुनि महाराज तो ज्ञानी हैं। क्या वे इन बातों पर भी ध्यान देते हैं? पता नहीं। मूर्तियों पर प्रशस्तियां लिखी जाती हैं। उन प्रशंस्तियों में प्रतिष्ठा करवाने वाले मुनि महाराजों का नाम भी लिखा जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि अधिक मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराने का भी एक कारण है। जितनी मूर्तियां उतनी मूर्तियों की प्रशस्तियों में महाराज जी का नाम। इसलिए अधिक से अधिक मूर्तियों की प्रतिष्ठा तथा उसके लिए अधिक से अधिक पंचकल्याणक करवाये जाते हैं।

कौन व्यक्ति मोक्ष जायेगा, कौन व्यक्ति तीर्थंकर बनेगा, यह हम जैसे छदमस्थ तो क्या वर्तमान के कोई भी सन्त–महात्मा, साधु–आचार्य भी नहीं बता सकते। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में देखा गया कि सन्तों के संघ में विराजमान श्रावक या फिर हम जैसे ही गृहस्थ अति उत्साही होकर सन्तों की तारीफ/प्रशंसा में सन्तों को **भावी तीर्थंकर** कह कर संबोधित करने लगे हैं। कभी–कभी एक–आधबार हो जाये तो समझ सकते हैं कि अति उत्साह में आकर कह दिया होगा, लेकिन बार–बार ऐसा कहा जाये तो क्या मानें? चूंकि सन्त/मुनि महाराजों को इसका निषेध करते या इसके सम्बन्ध में लोगों को समझाते नहीं देखा, इससे तो ऐसा ही लगता है कि स्वयं महाराज ऐसा कहलवाना पसन्द करते हैं। सोचने की बात तो यह है कि क्या यह उचित है?

लगभग 40–45 वर्ष पहले (सन् 1970–75 के मध्य) शास्त्र सभाओं में विद्वानों के बीच यह चर्चा चलती थी कि कुछ तीर्थों पर मूल प्रतिमा को **बाबा** कह कर सम्बोधित करा जाने लगा है, जैसे कि देहरे वाले बाबा (तिजारा के चन्द्रप्रभु), चांदनपुर के बाबा (श्री महावीर जी के महावीर स्वामी), कुण्डलपुर के बाबा (कुण्डलपुर के आदिनाथ भगवान) आदि तो क्या तीर्थंकरों को बाबा कहकर सम्बोधित करना उचित है? प्रायः सभी विद्वान इसको उचित नहीं मानते थे। लेकिन यह परम्परा धीरे–धीरे विस्तार पाने लगी है। कई स्थानों की तीर्थंकर मूर्तियां **बाबा, बड़े बाबा** आदि नामों से पुकारी जाने लगी हैं। एक और नई परम्परा चली है वह यह कि जहां एक ओर तीर्थ से जुड़ी मूर्ति को यदि बड़े बाबा से सम्बोधित किया जाने लगा है वहीं तीर्थों से जुड़े साधु–सन्तों को इस तीर्थ के **छोटे बाबा**। तो क्या वह तीर्थ मात्र अमुक छोटे बाबा के हैं, अन्य साधु–सन्त वहां नहीं जा सकेंगे? मूल प्रश्न यह है कि भगवान के 1008 नामों में क्या एक नाम बाबा

या बड़े बाबा भी है? और क्या आचार्य, उपाध्याय या साधु का पर्यायवाची नाम छोटे बाबा भी है? क्या तीर्थंकर प्रतिमाओं को बड़े बाबा या बाबा कहने से हम तीर्थंकर पद की अवमानना तो नहीं कर रहे? हमारा नम्र निवेदन है कि तीर्थंकर को तीर्थंकर रहने दे, उसे बड़े बाबा या बाबा न बनायें।

हमने भी 40–50 वर्ष पहले **साधु–सन्तों के चातुर्मास** देखे हैं। उस समय का मुझे तो याद नहीं आता कि उन अलग–अलग सन्तों की उनके नाम से अलग–अलग पूजा व आरती होती थी जैसे कि चौबीस भगवानों की अलग–अलग पूजायें आदि होती हैं। न कुछ इस प्रकार की प्रथा थी कि अनिवार्य रूप से उनकी पूजा व आरती करनी है। कभी कभार कोई एक व्यक्ति णमोकार मंत्र बोलकर अर्घ चढ़ा आता था। अब स्थिति बदल गई है। जितने सन्त उतनी **पूजा व आरती** और वह भी प्रतिदिन अनिवार्य रूप में होती है। भक्तों की भक्ति तो देखते बनती है, नाच गाने संगीत सभी कुछ के साथ इतनी भक्ति! इन पूजा पाठ व आरती में सन्त का गुणानुवाद उनके माता–पिता का गुणानुवाद ठीक वैसे ही होता है जैसे कि तीर्थंकरों की पूजा–आरती में होता है। कई स्थानों पर देखा है कि सन्त–विशेष की जिस उत्साह से पूजा व आरती होती है उतने उत्साह से वहीं विराजमान जिन मूर्ति की नहीं होती है। सन्तों को भी यह कार्य भाने लगा है। यह सब उनकी दिनचर्या में सम्मिलित हो गया है, पूजा व आरती के लिए निश्चित समय पर उनका तैयार होकर बैठना भी दिखता है।

एक नई परम्परा **कलश स्थापना** की और प्रारम्भ हुई है। कलश स्थापना की बोलियां भी लगती हैं। यह बोलियां अधिक से अधिक ऊंची लग सकें इसके लिए सन्त–महात्मा स्वयं मंच पर उपस्थित रहते हैं। वे तब तक विराजमान रहते हैं जब तक बोलियां पूरी न हो जायें। पता नहीं कब से ये क्रियायें उनके मूल गुणों और आवश्यकों में सम्मिलित हो गईं! यह कार्य कितना उचित और आवश्यक है, इस पर विचार होना चाहिए।

कुल मिलाकर हमारा कहना यह है कि साधु–सन्तों तथा गृहस्थ श्रावकों की कृपा से जैन सिद्धान्तों, मान्यताओं और क्रियाओं में काफी परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन निरन्तर बढ़ रहा है, तथा यह कहां जाकर रुकेगा, पता नहीं। सामान्य जन असमंजस्य में हैं। उन्हें यह पता नहीं चल पा रहा है कि क्या सही है और क्या गलत। जहां अधिक चकाचौंध हो वह उसी को सही मानने लगता है। क्या विद्वत वर्ग बिना किसी लोभ और भय

के सामने आकर सही राह दिखाने की कृपा करेंगे? यदि वे ऐसा करते हैं तो यह उनकी जैन धर्म के प्रति बड़ी सेवा होगी।

जैन तीर्थों पर घटी प्रमुख घटनायें

वर्ष 2018–19 में जैन तीर्थ गिरनार जी, पालीताना और शिखर जी में जैन विरोधी घटनाएं सामने आयीं। **गिरनार** की पहली टोंक पर चावल चढ़ाने पर पाबंदी लगा दी गई, **पालीताना** में हिन्दुओं द्वारा जैन सन्तो के साथ अभद्र व्यवहार किया गया, तथा **शिखर जी** पर 3 दिनों तक हिन्दुओं के विरोध के कारण जैनों को जाने नहीं दिया गया। इनके अतिरिक्त और भी कई बातें सामने आई जिन्हें जैन धर्म और समाज के लिए अच्छा नहीं कहा जा सकता है। कुल मिलाकर समाज का नेतृत्व दिशाहीन नजर आ रहा है।

पंचकल्याणकों, प्रतिष्ठाओं और नये तीर्थों के निर्माण के प्रति हमारा मोह यथावत है। जहां कोई पूजा–प्रक्षाल करने वाला नहीं है वहां पर भी नए निर्माण हो रहे हैं।

दिगम्बर जैन सन्तों की संख्या 1700 तक पहुंच गई, इसमें से 165 तो आचार्य एवं आर्यिका प्रमुख हैं। श्वेताम्बर सन्तों की संख्या तो 12000 से भी अधिक होगी। 10 प्रतिशत के लगभग सन्त एकल–बिहारी हैं। जितने अधिक सन्त हैं, उतनी अधिक उनकी भावना है कि मेरे नाम से भी कोई नया तीर्थ बने, कोई नया कार्य हो, मेरे नाम का सिक्का चले, मैं औरों से अलग दिखूं। इन भावनाओं के चलते नई–नई प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिल रहा है। जितने सन्त उतनी ही उनके नाम की आरती और पूजा। अपने को दूसरे से अलग दिखाने की होड़ में भगवान महावीर ने क्या कहा इस पर चर्चा कम, मैं सही दूसरा गलत इस पर चर्चा अधिक होती है। अपने को अलग दिखाने के चक्कर में कई सन्त अजीबोगरीब कार्य करते देखे गए हैं। कई सन्त अपने मार्ग से च्युत होते नजर आ रहे हैं। उसी का नतीजा रहा कि शीतल सागर, प्रतीक सागर, नयन सागर, अनुज सागर आदि के प्रकरण सामने आए। अनेक विचित्र बातें भी देखने और सुनने में आई। एक आचार्य भगवान की मूर्ति की गोदी में बैठे हैं तो दूसरे तलवारबाजी के करतब दिखा रहे हैं और पिस्तौल चला रहे हैं, एक दूसरे महाराज गुफा में बैठकर फल–फूल से पूजा कर रहे हैं तथा कुछ सिद्धि–सी कर रहे हैं तो दूसरे अपनी मोटी मूछों पर गर्वित हो रहे हैं। वीतराग भगवान के साथ होली खेली जा रही है। मानो भक्त लोग कह रहे हैं कि हम तो रागी–द्वैषी

और पापी हैं ही, वीतराग भगवान को भी हम रागी–द्वैषी बना कर ही दम लेंगे। कुछ सन्त किसी राजनीतिक पार्टी विशेष को वोट देने के लिए वकालत करते नजर आ रहे हैं, उनके द्वारा टीवी तक पर यह खुला प्रचार किया जा रहा है। कई विद्वानों व पत्रकारों ने सन्तों में बढ़ते शिथिलाचार को लेकर चिन्ता व्यक्त की, एकल–विहारी एवं शिथिलाचारी साधुओं का बहिष्कार करने के निर्णय भी लिए गए। लेकिन हास्यास्पद यह रहा कि जो अधिक बोलते थे वे ही एकल–विहारी मुनियों की गोदी में जाकर बैठने को उत्सुक दिखे।

जिस प्रकार वर्तमान में स्थिति नजर आ रही है उससे लगता है कि आने वाले समय में भी इसमें कुछ खास सुधार होने वाला नहीं है। लेकिन इन सबके बीच एक अच्छी बात यह रही कि जैन समाज की आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर हुई है। इसके चलते अनेक लोग व्यक्तिगत तौर पर गरीब जैनों की मदद के लिए सामने आए हैं। एक सर्वे के अनुसार देश में लगभग 200 ऐसी संस्थाएं हैं जो गरीब जैनों को आर्थिक मदद पहुंचा रही हैं। राष्ट्रीय स्तर पर श्वेताम्बर संस्थाएं कार्यरत हैं लेकिन दिगम्बरों में ऐसी कोई समुचित पहल नहीं हो पायी है।

डी–197, मोती पार्क के सामने, मोती मार्ग, बापू नगर, जयपुर–302015 राज.

(तीर्थंकरों की मूर्तियां अब विभिन्न रंगों में भी बनाई जाती हैं और कहा जाता है कि यह उनके शरीर का रंग था। आरा के बड़े पंचायती मन्दिर की छत पर ये मूर्तियां देखी जा सकती हैं। तीर्थक्षेत्र सोनागिर के ऊपरी तल पर, छत के खुले मैदान में भी ये मूर्तियां देखी जा सकती हैं।

श्रवणबेलगोला में बाहुबलि की मूर्ति को तीर्थंकर के समकक्ष पद दे दिया गया है। कला की दृष्टि से यह एक अद्‌भुत कृति है परन्तु पूज्यनीयता की दृष्टि से यह उचित नहीं है।

(डॉ. शशि कान्त)

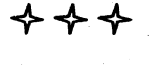

जैन समाज के समक्ष चुनौतियां एवं उनके समाधान पर विचार

– श्री सन्दीप कान्त जैन

जैन धर्म के अनुयायियों का समूह जैन समाज के नाम से जाना जाता है। इस समाज के दो वर्ग हैं – दिगम्बर और श्वेताम्बर। हमारे देश की जनसंख्या 135 करोड़ है और जैन समाज की संख्या एक करोड़ से भी कम है अतः उसे अल्पसंख्यक की मान्यता प्राप्त है। दिगम्बर आम्नाय में ही कई वर्ग हैं – तेरह पंथ, बीस पंथ, तारण पंथ और कांजी पंथ; श्वेताम्बर आम्नाय में भी मूर्ति पूजक, स्थानक वासी और तुलसी गणि का पंथ हैं।

वर्तमान में जैन समाज के सामने जो प्रमुख चुनौतियों हैं, उनके बारे में जानना आवश्यक है, और इन चुनौतियों से निपटने के लिए कौन से उपाय अपनाये जायें इन पर भी विचार किया जाना अपेक्षित है। तभी हम जैन समाज के भविष्य को अतीत की भांति ही गौरवमयी बना सकते हैं। प्रस्तुत लेख में इन्हीं बिन्दुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। प्रमुख चुनौतियां जो वर्तमान में जैन समाज के समक्ष हैं :

1. समाज की विभिन्न जातियों–उपजातियों में सामंजस्य एवं मतैक्य का अभाव। अपना–अपना वर्चस्व कायम करने हेतु होड़ और कई बार तो एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश।
2. सामाजिक संगठन के किसी भी ढांचे का (पूर्व में प्रचलित बिरादरी/पंचायत) लगभग न होना जिसकी वजह से वर्तमान में निरंकुशता का निरंतर बढ़ना।
3. वर्तमान में किसी सर्वमान्य सशक्त नेतृत्व का न होना।
4. नई पीढ़ी में धार्मिक रुझान का नितांत अभाव, जिसके लिए हमारी वर्तमान पीढ़ी ही ज्यादा उत्तरदायी है। नित्य मन्दिर–दर्शन तो दूर की बात है, शाकाहार जैसी हमारी मूल पहचान को भी नई पीढ़ी के युवक–युवती खोने में लगे हैं, जो चिन्ता का विषय है।

5. धार्मिक–शिक्षा का हमारा बना बनाया पारम्परिक ढांचा भी लगभग समाप्त होने की स्थिति में है और हमारी तथाकथित अखिल भारतीय संस्थाएं भी इस महत्वपूर्ण विषय से लगभग उदासीन ही हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कोई भी धर्म अथवा समाज तभी जीवित रहेगा जब उस धर्म के धर्मावलम्बी अपने धर्म–संस्कृति इतिहास को जानते एवं मानते हों। धार्मिक शिक्षा की इसी लौ को जलाने के लिए बीसवीं शताब्दी में प्रारम्भिक वर्षों में दिगम्बर जैन परीक्षा बोर्ड की स्थापना की गई थी जिसके सुखद परिणाम भी सामने आए थे।

6. समर्पित कार्यकर्ताओं की सख्त कमी व स्वयंभू नेताओं का बोलबाला जो कि सिर्फ मंच–माला–माइक के सहारे सामाजिक संस्थाओं पर कब्जा जमाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं।

7. समाज के ज्यादातर संसाधनों का सही जगह पर उपयोग होने के बजाए फिजूलखर्ची/दिखावे वाले कार्यों में अपव्यय होना।

8. संस्थाओं के पदाधिकारियों में उत्साह की कमी की वजह से कई अखिल भारतीय संस्थाएं भी लगभग अकर्मण्यता की स्थिति में हैं। यह स्थिति सुखद नहीं है।

9. तीर्थक्षेत्रों/सिद्धक्षेत्रों के प्रति समाज के उदासीन रवैये की वजह से हमारे कई तीर्थक्षेत्र (यहां तक कि प्रमुख तीर्थक्षेत्र – गिरनार जी, सम्मेद शिखर जी, महावीर जी भी) अव्यवस्था, मूलभूत सुविधाओं के अभाव तथा विवादों से ग्रस्त हैं। इसी उद्देश्य से गठित तीर्थक्षेत्र कमेटियां भी प्रभावी तरीके से अपना दायित्व निभाने में सक्षम नहीं हो पा रही हैं।

10. हमारे मन्दिरों में चोरियां आम बात हो गई है। इसकी एक वजह शायद यह है कि हमारे अपरिग्रही धर्म/समाज के बारे में लोगों को भ्रान्ति हो गई है कि जैन समाज बेहद सम्पन्न है और इनके मन्दिरों में धन/मूल्यवान वस्तुएं–मूर्तियां काफी हैं। यह बात कुछ हद तक सत्य हो सकती है, लेकिन पूर्णतया नहीं।

11. समाज में बढ़ती आर्थिक विषमता के कारण आपसी वैमनस्य। दिखावे की प्रवृत्ति और एक दूसरे से होड़ के कारण भी कई दुष्प्रवृत्तियां

समाज में पनप रही हैं, जिन पर विराम लगाने के लिए एक सशक्त नेतृत्व की आवश्यकता है।

वर्तमान में जैन समाज के सम्मुख चुनौतियों से निजात पाने हेतु सुझाव

समग्र जैन समाज में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नायों के लिए एक अखिल भारतीय संस्था का होना अपेक्षित है। सम्पूर्ण रूप से दोनों आम्नाय एक साथ नहीं जुड़ सकती। जैन समाज की एकता के लिए **महावीर जयंती, अहिंसा दिवस** और **क्षमा दिवस** के रूप में कोई आयोजन होना आवश्यक है इसके लिए दोनों ही सम्प्रदायों के प्रतिष्ठित जनों को मिलकर विचार करना चाहिए।

दिगम्बर जैन समाज से पिछले काफी समय से जुड़ा होने और उसकी सम्यक् स्थिति पर विचार करने के पश्चात् मुझे ऐसा लगता है कि दो प्रकार की कार्य योजना बनाकर कार्य किया जा सकता है यदि ऐसा करने की इच्छा शक्ति हो –

(अ) समस्याओं के त्वरित निदान हेतु, नेतृत्व प्रदान करना; व (ब) दूरगामी कार्य योजना जो लम्बे समय की समाज की आवश्यकताों को ध्यान में रखकर बनाई जाये। इस समय हमारी सबसे बड़ी समस्या हमारे समाज में किसी प्रभावी/सशक्त सर्वमान्य नेतृत्व का न होना है। यदि हम पूरे लोकतांत्रिक ढंग से सारे भारतवर्ष से किसी नेतृत्व को उभारने का प्रयास करेंगे, तो उसमें समय और व्यय भी अधिक लगेगा, वाद–विवाद भी होंगे और तब तक हम उन समस्याओं पर भी ध्यान नहीं दे पायेंगे जो हमारे समक्ष वर्तमान में हैं। अतः मेरी दृष्टि में बेहतर यह होगा कि हम वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार फौरी तौर पर कुछ प्रमुख कदम उठायें जो समाज की वर्तमान चुनौतियों से निजात पाने में सहायक हों।

क) सभी प्रमुख दिगम्बर जैन अखिल भारतवर्षीय संस्थाएं जो इस समय समाज में सक्रिय हैं (जैसे कि दिगम्बर जैन महासभा, महासमिति, दिगम्बर जैन परिषद, दक्षिण भारत जैन सभा, दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, आदि) की एक शीर्ष प्रतिनिधि समिति का गठन हो। यह समिति दिगम्बर जैन समाज की सभी फौरी समस्याओं पर विचार–विमर्श करने के लिए समय–समय पर बैठे और जो भी बहु–सम्मत व समाज–हित में उचित समाधान अपेक्षित हों उस दिशा में समन्वित तरीके से कार्य करे। समाज की प्रमुख संस्थाओं की यह शीर्ष समिति समाज हित में सभी निर्णय लेने व उनको कार्यान्वित करने के लिए पूर्णतया स्वतंत्र हो। समाज भी, इस

शीर्ष समिति के सभी आह्वानों/दिशा–निर्देशों का निष्ठापूर्वक पालने करें। यह शीर्ष समिति अपनी कार्यकारिणी भी गठित कर सकती है।

ख) दिगम्बर जैन समाज की एक बेवसाइट उपरोक्त शीर्ष नेतृत्व समिति के द्वारा बनवाई जाये, क्योंकि आज के समय में तकनीक का सहारा लेकर समाज के प्रत्येक तबके तक बहुत कम समय में पहुंचने का एक बेहतर विकल्प यही है। इस बेवसाइट में दिगम्बर जैन समाज के बारे में, उसकी संस्कृति, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व, तीर्थ क्षेत्रों, संस्थाओं मन्दिरों के बारे में यथासम्भव पूरी जानकारी हो। बेहतर होगा यदि इस बेवसाइट में जैन विद्वानों की स्थायी महत्व की पुस्तकों/शोध सामग्री का संरक्षण हो।

ग) प्रशासनिक अधिकारियों न्यायविदों व समाज के विद्वानों का एक पैनल भी गठित किया जा सकता है, जो सब मिलकर न्यायालयों में लम्बित समाज से सम्बन्धित विवादों में समाज का पक्ष रखें, 'शीर्ष नेतृत्व समिति' को विश्वास में लेकर।

घ) भारतवर्षीय तीर्थक्षेत्र कमेटी सरकारों के सहयोग से तीर्थक्षेत्रों पर इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास करें।

ङ) धार्मिक शिक्षा बच्चों और युवाओं को पूर्व में स्थापित संस्थाओं के माध्यम से पुनः शुरू हो।

च) शीर्ष नेतृत्व समिति समाज के उपेक्षित/पिछड़े/गरीब लोगों की भी यथासंम्भव आर्थिक मदद करे और जहां सम्भव हो सरकार की अल्प संख्यक कल्याण योजनाओं से मदद दिलवाएं। इस प्रकार एक सामाजिक जुड़ाव के वातावरण का निर्माण होगा, जो सुनहरा भविष्य लिखेगा।

छ) समाज में व्याप्त हो रही कुरीतियों – जैसे कि बढ़ते दिखावे की वजह से अनावश्यक फिजूलखर्ची, दहेज, मृत्यु भोज, सन्तों में हो रहे गम्भीर स्खलन पर भी शीर्ष समिति समाज को जागृत करने के लिए जरूरी दिशा–निर्देश दे सकती है, जिससे समाज में चेतना आयेगी।

ज) जहां तक दूरगामी कार्ययोजना की बात है, उपरोक्त शीर्ष समिति इस दिशा में कार्य करने के लिए योजना बना सकती है। मन्दिरों को इकाई मानकर एक "महामन्दिर संघ' बनाया जा सकता है जिसमें प्रत्येक मन्दिर के अध्यक्ष व मंत्री सदस्य हों।

जैन समाज के अच्छे भविष्य के लिए उपर्युक्त सुझाव उपयोगी हो सकते हैं। इन पर समन्वित रूप से जैन समाज का प्रबुद्ध वर्ग और वर्तमान में स्थित संस्थाएं विचार कर सकते हैं।

रोगोपचार सेवा हेतु अहिंसा का पालन आवश्यक

— डॉ. चंचलमल चौरड़िया

उपचार की आवश्यकता

स्वस्थ जीवन मानव की प्रमुख आवश्यकता है। जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ, सभी स्वास्थ्य वैज्ञानिक, आध्यात्मिक योगी एवं चिकित्सक इस प्रयास हेतु सतत प्रयत्नशील हैं कि मानव को रोग मुक्त कैसे रखा जा सके। अतः उपचार से पूर्व हमें यह जानना आवश्यक है कि अच्छा स्वास्थ्य कैसा होता है? रोग कब, क्यों और कैसे होता है? सही निदान, अच्छी चिकित्सा के मापदण्ड क्या होते हैं!

विकार एवं विभाव अवस्था रोग का सूचक है

स्वास्थ्य का अर्थ होता है – विकारमुक्त अवस्था। रोग का तात्पर्य विकारयुक्त अवस्था यानि कि जितने ज्यादा विकार उतने ज्यादा रोग। जितने विकार कम उतना ही स्वास्थ्य अच्छा। विकार का मतलब अनुपयोगी, अनावश्यक, व्यर्थ, विजातीय तत्व होते हैं। जब ये विकार शरीर में होते हैं तो शरीर रोगी बन जाता है, परन्तु जब ये विकार मन, भावों और आत्मा में होते हैं तो क्रमशः मन, भाव और आत्मा विकारी अथवा अस्वस्थ कहलाती हैं। स्वस्थ का मतलब होता है स्व में स्थित हो जाना अर्थात् अपने मूल स्वरूप में आ जाना, जैसे कि अग्नि के सम्पर्क से पानी उबलने लगता है परन्तु जैसे ही पानी को अग्नि से अलग करते हैं, धीरे–धीरे वह स्वतः ही ठंडा हो जाता है क्योंकि शीतलता पानी का स्वभाव है, गर्मी नहीं, अतः पानी को वातावरण के अनुरूप रखने के लिए किसी बाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार शरीर में हड्डियों का स्वभाव कठोरता होता है, परन्तु किसी कारणवश कोई हड्डी नरम हो जाए, उसमें लचीलापन आ जाए तो रोग का कारण बन जाती है। मांसपेशियों का स्वभाव लचीलापन होता है परन्तु उसमें किसी कारणवश कठोरता आ जाए, गांठ हो जाए, विजातीय तत्वों के प्रभाव के कारण अथवा आवश्यक रसायनों के अभाव के कारण यदि शरीर के किसी भाग की मांसपेशियों में लचीलापन समाप्त हो जाये अथवा क्षमतानुसार न हों तो रोग का कारण बन जाती है। शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारेनहाईट रहना चाहिए, परन्तु किसी कारणवश कम या ज्यादा हो जायें तो शरीर में रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। रक्त सारे शरीर में आवश्यकतानुसार ऊर्जा पहुंचाने का कार्य

अबाध गति से करता है, अतः उसके संतुलित प्रवाह हेतु आवश्यक गर्मी एवं निश्चित दबाव आवश्यक होता है, परन्तु यदि हमारी अप्राकृतिक जीवन शैली से रक्त का बराबर निर्माण न हो अथवा दबाव आवश्यकता से कम या ज्यादा हो जाए तो सारे शरीर में प्राण ऊर्जा का वितरण प्रभावित हो जाता है, रक्त नलिकाओं के फैलने अथवा सिकुड़ने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं अर्थात् अपना स्वरूप बदल देती है, अतः रोग की स्थिति पैदा हो जाती है।

शरीर का गुण है कि जो अंग और उपांग शरीर के जिस स्थान पर स्थित हैं उनको वहीं स्थित रखना तथा हलन–चलन के बावजूद आगे–पीछे न होने देना, शरीर में विकार उत्पन्न होने पर उसको दूर करना और पुनः अच्छा करना, अनावश्यक अनुपयोगी, विजातीय तत्वों का विसर्जन करना। यदि कोई हड्डी टूट जाये तो उसे पुनः जोड़ना। चोट लग जाने से यदि घाव हो जाए तो उसको भरना तथा पुनः त्वचा पर आवरण लगाना। रक्त बहने अथवा रक्तदान आदि से शरीर में जो रक्त की कमी हो गई हो तो उसकी पूर्ति करना। उपर्युक्त एवं ऐसे अनेक कार्य शरीर के गुण एवं स्वभाव हैं परन्तु यदि किसी कारणवश शरीर इन कार्यों को बराबर न करें तो यह उसकी विभाव दशा कहलाती है अर्थात् रोगों का प्रतीक होती है।

शरीर विभिन्न तंत्रों का समूह है, जैसे कि ज्ञान तंत्र, नाड़ी तंत्र, श्वसन, अस्थि, मज्जा, लासिका, प्रजनन, विसर्जन आदि। शरीर में पीयूष, पिनियल, थॉयराइड और पेराथॉयराइड, एड्रीनल, थाइमस, प्रजनन आदि अन्तःस्रावी ग्रन्थियां जब असक्रिय अथवा अतिसक्रिय हो जाती हैं तथा उनके कार्यों को संचालित और नियंत्रित करने के लिये बाह्य सहयोग या आलम्बन लेना पड़े तो यह शरीर की विभाव दशा होती है। अतः ये भी रोग का सूचक होते हैं।

उपचार की प्रभावशाली अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों पर सम्यक् चिन्तन आवश्यक

रोगी का उपचार कराना हमारा कर्तव्य है। आज विकल्प के रूप में सारे विश्व में निर्दोष प्रभावशाली, स्वावलम्बी अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन स्वास्थ्य मंत्रालय की पूर्ण उपेक्षा होते हुए भी बढ़ रहा है। जो पद्धतियां पूर्ण रूप से वैज्ञानिक हैं, सहज, सरल, सस्ती, स्वावलम्बी एवं दुष्प्रभावों से रहित होने के बावजूद अत्यधिक प्रभावशाली भी हैं, इसी कारण सभी चिकित्सा पद्धतियों से परेशान हुए रोगी इन पद्धतियों की तरफ आकर्षित हो पुनः स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रहे हैं। **एक्युप्रेशर** चिकित्सा

पद्धति निदान की दृष्टि से आज सर्वश्रेष्ठ पद्धतियों में से एक है जिसमें रोग का प्रारम्भिक अवस्था में ही पता लगाया जा सकता है। आज अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का जितना सरल उपचार इस पद्धति में है शायद अन्य में नहीं। यह पद्धति शरीर के साथ–साथ हमारे मानसिक एवं चारित्रिक विकास में भी महत्वपूर्ण सहयोगी है, परिपूर्ण है एवं सर्वत्र सदैव सभी के लिये उपलब्ध है। चीनी पंच तत्व के सिद्धान्तों पर आधारित सुजोक बियोल मेरेडियन में ऊर्जा संतुलन की सरल विधि द्वारा असाध्य एवं संक्रामक रोगों का प्रभावशाली अहिंसक उपचार सम्भव हो सका है। परिणाम स्वरूप पचास प्रतिशत से अधिक शल्य चिकित्सा को टाला जा सकता है।

शरीर की निष्क्रिय कोशिकाओं को स्फटिकों की तरंगों द्वारा तुरन्त सक्रिय करने वाली एनर्जी स्टीक अथवा एनर्जी कार्ड जैसे उपकरण जो बाजार में उपलब्ध हैं, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाकर रोगों के लिए सुरक्षा कवच का कार्य कर रहे हैं, जिससे पूर्णतः स्वावलम्बी अहिंसक उपचार बहुत ही सरल, सहज, प्रभावशाली, दुष्प्रभावों से रहित एवं स्थायी सिद्ध हो रहा है। शरीर के शुद्धिकरण की विभिन्न सरल प्रक्रियाओं द्वारा लीवर, गुर्दे जैसे प्रमुख अंगों में जमे विजातीय तत्वों की सफाई बिना किसी चिकित्सक के सहयोग से तथा शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी न रखने वाला भी अपने घर में चन्द घण्टों में स्वयं कर सकता है एवं हृदयघात जैसे रोगों को टाला जा सकता है।

चुम्बकीय चिकित्सा, रक्त सम्बन्धी एवं जोड़ों सम्बन्धी रोगों में अत्यधिक प्रभावशाली है, जो पूर्ण रूप से पीड़ा रहित है। शरीर को शक्ति प्रदान करने एवं शारीरिक क्षमताओं को बढ़ाने में बहुत सहायक है। इसी प्रकार स्वर, योग, शिवाम्बु, हास्य, नाभि, मेथी, शरीर का संतुलन, कपिंग, चैतन्य, आहार, रंग, सूर्य किरण, रत्न, पिरामिड, मुद्रा, दूरस्थ, ध्यान, सुजोक, क्रिस्टल आदि चिकित्सा पद्धतियों के समन्वित प्रयोगों से जो प्रभावशाली परिणाम प्राप्त हो रहे हैं, वे हमारी पूर्वग्रसित भ्रमित धारणाओं को चौंकाने वाले हैं तथा जनसाधारण उनकी तरफ आकर्षित होता जा रहा है। जिस प्रकार मोबाइल अथवा टेलिफोन की घण्टी सुनने पर सामान्य जानकारी रखने वाला व्यक्ति टेलिफोन करने वाले से संवाद कर सकता है, स्विच चालू करने मात्र का ज्ञान रखने वाला आवश्यकता पड़ने पर बिजली का उपयोग कर सकता है भले ही उसको इस बात का ज्ञान न हो कि बिजली का आविष्कार किसने और कब किया, बिजली का उत्पादन कैसे होता है,

बिजली हमारे घर एवं स्विच तक कैसे पहुंचती है, फिर भी साल के 365 दिनों में लगभग 360 दिन उसके उपयोग हेतु तकनीशियन के सहयोग की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार स्वावलम्बी निर्दोष चिकित्सा पद्धतियों को प्रत्येक व्यक्ति चन्द दिनों में सरलता से सीख सकता है। उस हेतु न तो शरीर विज्ञान के ज्ञान की और न व्यावहारिक शिक्षा की विशेष आवश्यकता होती है।

उपसंहार

सारांश यही है कि सेवा के लिये साधन, साध्य एवं सामग्री पवित्र हों। अज्ञानवश अथवा निज स्वार्थ के लिये प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से अन्य प्राणी जगत के साथ अत्याचार, क्रूरता एवं हिंसा को प्रोत्साहन नहीं मिले। हम करणीय–अकरणीय तथा हिंसा–अहिंसा का विवेक रखकर सेवा कार्यों की योजना बनावें एवं ऐसे किसी कार्य में सहयोगी न बनें जो अहिंसा की मूल मान्यताओं एवं सिद्धान्तों के प्रतिकूल हों। भूत की भूलों का हम परिमार्जन करें ताकि पूर्व में समाज द्वारा संचालित अस्पतालों में अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों द्वारा उपचार एवं शोध का प्रयास प्रारम्भ हो। हमारे वर्तमान की परिपक्व धारणाएं, संस्कार, डॉक्टरों एवं दवा विक्रेताओं का भ्रामक प्रचार भले ही इस लक्ष्य की प्राप्ति में कितना ही बाधक क्यों न हों, सेवा के मूल स्वरूप की रक्षा करनी है। जहां अनन्त करुणा, अनन्त मैत्री एवं परोपकार का हृदय से झरना न बहता हो, हित–अहित का विवेक न हो, निःस्वार्थ मनोवृत्ति, सरलता, विनय न हो, परन्तु बाह्य रूप से दिखावा मात्र हो, उन्हें सेवा का आदर्श मानना हमारे चिन्तन की अदूरदर्शिता एवं मानसिक पराधीनता होगी। सम्यक् चिन्तन का प्रत्येक बिन्दु एवं उस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु किया गया प्रत्येक प्रयास, भविष्य के लिये मार्गदर्शक बनेगा। अतः यदि हम अनावश्यक हिंसा में सहयोगी न बनने का संकल्प लेंगे तब ही हम चिरसंचित हमारी अहिंसा की पहचान रूपी धरोहर की रक्षा करने का दायित्व निभा सकेंगे।

चौरड़िया भवन, जालोरी गेट के बाहर, गोल बिल्डिंग रोड, जोधपुर–342003 (राज.)

चली कुल्हाड़ी वृक्ष पर

— श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'

चली कुल्हाड़ी वृक्ष पर, छाया हुई विलीन।
वायु साथ ही हरितिमा, हुई एक–दो–तीन।।
नौ–दो–ग्यारह कर दिये, मार्ग तटों के वृक्ष।
दुखी मनुज, फिर भी कहें, हम विकास में दक्ष।।
नाले, नदियों में मिले, लेकर गंदला नीर।
जल कुम्भी जल ढक रही, नदी दशा गम्भीर।।
पालिथीन से बढ़ रहा, अब दूषण हर ओर।
मक्खी मच्छर पल रहे, रोग व्याधि घनघोर।।
नाली नाले हो रहे, प्रदूषण के भण्डार।
कूड़े से सड़के पटीं, मच्छर की भरमार।।
कोई है हैरान अति, देख सड़क पर जाम।
कोई है हर्षान्वित, थाम हाथ में जाम।।
स्वास्थ्य चिकित्सक कह रहे, अच्छा शाकाहार।
इसे ग्रहण कर लीजियो दीर्घ आयु उपहार।।

चन्द्रा मण्डप, 370/27, हाता नूरबेग, संगमलाल वीथिका, सआदत गंज, लखनऊ–226003

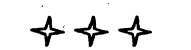

विदेशी संस्कृति की मेज़वानी

— डॉ. परमानन्द जड़िया

धरा वही है गगन वही है, परन्तु मानव बदल गया है।
न उसके घर में है पेड़ पौधे, न गाय आंगन में दीखती है।।
न वृद्ध जन की है चारपाई, न उनका हुक्का न भांग बूटी।
न दादी नानी की लोरियों की मधुर कथाओं को सुनने वाले।।

न घर में तुलसी न देव मन्दिर, न शंख चन्दन न धूप रोली।
न तोता मैना न है कबूतर, न घर में गृहणी न पाकशाला।।
समाज–सेवा में सब लगे हैं, पढ़ाये बच्चों को कौन घर में।
मंगा के होटल से खा रहे हैं, न उनके बच्चे हैं साथ रहते।।

न जानते वे पड़ोसियों को, नमन न करते हैं वे किसी को।
मनुष्य होकर मनुष्यता से है दूर कोसों बतायें कैसे।।
बदल गया है समाज ऐसा, न दादी बाबा, न ताउ चाचा।
न गांव खेती, न बाग बागर, न सत्यव्रत की कथा कहानी।।

ये खेल मंहगाई का नहीं है, विदेशी संस्कृति की मेज़वानी।
न रोक पाओगे तुम इसे अब है व्यर्थ लिखना कथा कहानी।।
परन्तु अच्छा नहीं ये लक्षण, मनुष्य जीवित समाज जब तक।
न व्यक्तिवादी रहे कभी हम, पुराण सद्ग्रंथ कह रहे हैं।।

मनुष्यता

— डॉ. परमानन्द जड़िया

मनुष्य होकर मनुष्यता से
तुम्हारा नाता रहा नहीं क्यों!
तुम्हारे घर के ही पास कोई
पड़ा हुआ है क्षुधा प्राणी।
न दृष्टि उस पर गयी तुम्हारी
मना रहे तुम दिवाली होली।।
ये कैसा चिन्तन विकास वादी
न वृद्ध जन की जहां सुरक्षा।
सभी की आंखें लगी शहर पर
न गांव घर से है नेह नाता।।
सुदूर देशों में जा बसे तुम
जहां न गंगा न गोमती है।
तुम्हारे मथुरा प्रयाग काशी
तुम्हारे बद्री केदार हिमगिरि।।
रहे नहीं क्यों तुम्हारे पूजित
बताओ कैसी ये आस्था है!
तुम्हारे दादा पिता तुम्हारे
हुये दिवंगत न आ सके तुम।
बताओ कैसी मनुष्यता यह।।
विदेश जाकर मिला तुम्हें क्या
तुम्हें भी आना न क्या बुढ़ापा!
सदा रहोगे जवान पठ्ठे।
विदेश की ये अपार सम्पत्ति
लिये हुये कूच तुम करोगे।।

जड़िया निवास, 51, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ–226003

चलता जाता हूं

— श्री राजीव कान्त जैन

कोई नहीं अपना,
कुछ नहीं अपना
सब सपना सा,
सोते रहता हूं

न उद्देश्य,
न आवश्यकता
समय सिंधु संग,
व्यर्थ बहता हूं

जीवन से परे,
यदि हूं मैं
नश्वर देह बंध,
क्यों सहता हूं

यदि यही जीवन,
उम्र अनन्त नहीं
तो गिनती कुछ हो,
क्यों डरता हूं

जो जन्मा, जायेगा,
अपनी–अपनी बार
व्यतिक्रम कर क्या,
अनहोनी करता हूं

ग़म न खुशी,
यदि हूं अनादि
फिर अंत किसका,
बोझ से उबरता हूं

शाखें वृक्ष हुयीं,
कर्म सब किये
पलायन नहीं, बस
औचित्य न पाता हूं

मैं क्यों हूं,
न समझ पाता हूं
असमंजस में बस,
चलता जाता हूं

न राग–द्वेष,
न मोह–माया
देह–पिंजर में,
चैन न पाता हूं

भले जीना अकारण,
क्या थमना निवारण
ऊहापोह में यूंही,
चलता जाता हूं .....

एक्ज़ीक्यूटिव डायरेक्टर, (सिग्नल), आर.डी.एस.ओ., लखनऊ

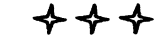

दूध

— कवि युगराज जैन

एक गगनचुम्बी इमारत का हो रहा था निर्माण,
एक मजदूर पत्नी संग कुदाली से, नींव खोदने में फूंक रहा था प्राण,
उनका नन्हा बेटा नींव की मिट्टी के ढेर पर मिट्टी से खेल रहा था,
मच्छरों के दंश झेल रहा था, अचानक रोने की आवाज पड़ी सुनाई,
मजदूरिन मां दौड़ी चली आई, कलेजे के टुकड़े को कलेजे से लगाया,
बड़े प्यार से उसे आंचल में छिपाया, उसकी भूख मिटाने के लिए,
बेटे को अमृतपान कराने के लिए, पर दूध नहीं आ रहा था,
बेटा रोता ही जा रहा था, क्योंकि दूध तो पसीना बन,
नींव को मजबूत कर रहा था, इधर बेटा भूखों मर रहा था,
मां की आंखे हो गई नम, तब मजदूर ने ढाढस बन्धाते कहा,
तू मत कर इतना ग़म, हमारे लिए ये खुशी क्या है कम
कि इसी इमारत के किसी फ्लैट के वातानुकूलित बैडरूम के मखमली गद्दे
पर कभी किसी का बेटा खेलेगा,
सुनहरे भविष्य के सपने बुनेगा,
बड़ा आदमी बनेगा, क्यों भाग्यवान, है न मेरी बात में दम,
चल पगली रो मत, फिर से मुन्ने को लगा आंचल से,
शायद दूध आ जाये, ममता के बादल से, दूध आता रहा,
बेटा पीता रहा, भूख मिटाता रहा, मुस्कराता रहा,
दोनों ने रब का शुक्रिया अदा करने आसमान पर नज़र डाली,
और बेटे को मिट्टी के ढेर पर छोड़ फिर से उठाई कुदाली,
अपना पसीना बहाने के लिए, किसी और के बेटे के जीवन में
खुशहाली लाने के लिए।

हिन्द इलेक्ट्रिक, नगोसयाची वाडी, सामना प्रेस के पास, नया प्रभा देवी मार्ग, प्रभा देवी–400025

✧✧✧

चल अकेला

— श्री अजित जैन 'जलज'

तेरी पुकार सुनकर
आये ना कोई भाई

तू चल ही पड़ अकेला
बातें करे ना कोई, ओ रे रे ओ अभागे,
सब मुंह फिरा के जायें
तो प्राण खोल के तू, आई जो मन में बातें,
तू बोल जा अकेला।.....अकेला..... ।।

सब लौट ही तो जायें,
ओ रे रे ओ अभागे,
कष्टों के कंटकों में,
मुड़के न कोई देखे।
कट फट चुके चरण से
चलता ही चल अकेला...अकेला...अकेला।।

बुझ जाये दिया तेरा
ओ रे रे ओ अभागे,
आंधी भरी अंधेरी,
रातों में सब भगा दें।
अपना हृदय जला के
रोशन ही कर अकेला....अकेला... ।।

(कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की बंगला में रचित 'एकला चलो रे' कविता का हिन्दी अनुवाद)

पारस होटल के पीछे, न्यू सिविल लाईन, टीकमगढ़ (म.प्र.)–472001

✧✧✧

एक मार्मिक घटना का चित्रण

इतना–सा साथ

– श्रीमती शेफाली मित्तल

दोपहर का वक्त था। मां और मेरी बेटी मुस्कान, खाना खाकर अपने–अपने कमरे में जा चुके थे। मैं भी किचन समेटकर अपने कमरे में जाने ही वाली थी कि Door Bell बजी। मैं हाथ पोंछते हुए दरवाजे पर पहुंची तो सामने डाकिया खड़ा था। "Telegram Mam" उसने कहा। मैंने धड़कते दिल और कांपते हाथों से Telegram ले लिया। डाकिये ने Signature करवाए और चला गया। Telegram Army office से था। मेरे पति चन्दर Army में Border पर एक साल से Posted थे। Border पर आतंकवादियों ने हमला कर दिया था और वो अपने देश की सुरक्षा के लिए वहां जी जान से लड़ रहे थे। Telegram पढ़ने की हिम्मत मैं नहीं जुटा पा रही थी। तभी मां की आवाज सुनाई दी, "कौन था बहू?" ये कहते हुए वो कमरे से बाहर आ गई। मैंने धीरे से कहा– "डाकिया था, मां"। ये सुनते ही उनकी नज़र मेरे हाथ पर गई और उन्होंने मेरे हाथ से Telegram ले लिया। घबराते हुए उन्होंने उसे unfold करके पढ़ना आरंभ किया। उसमें लिखा था, "वीर चन्दर शर्मा अपने देश के लिए लड़ते–लड़ते शहीद हो गए"। मां तो जैसे बरफ के समान ठंडी हो गई और मेरे तो पैरों तले जमीन ही सरक गई थी। अभी उम्र ही क्या थी मेरी। मुस्कान भी मात्र पांच वर्ष की ही तो थी। Telegram पर यकीन नही नहीं हुआ और मैं अतीत में कहीं खो गई।

हमारा प्रेम विवाह हुआ था। जब मैं कालेज में बी.ए. में पढ़ रही थी, तभी चन्दर का परिवार हमारे पड़ोस में स्थानान्तरित होकर आया था। चन्दर देखने में बहुत ही सुन्दर था। अक्सर अपने पिता के साथ हमारे घर आया करता था। मुझे उसके बोलने की शैली और विचार बहुत प्रभावित करते थे। वह सेना में सेवा करना चाहता था। वो हमेशा कहा करता था कि "अपनी मौत तो सभी मरते हैं, मैं तो देश की सेवा करते हुए मरना चाहता हूं"। उसका देश सेवा का जुनून मुझे बहुत प्रभावित करता था। आज़ादी मिलने के बाद उसे संभाल कर रखने वाला ज़ज्बा आज किसी नौजवान में नहीं दिखाई देता। उसकी सोच आजकल के नवयुवकों से बिल्कुल फ़रक थी। हम जब भी मिलते वो यही कहता कि "Army Join

करते ही सर्वप्रथम मैं सीमा पर जाना चाहूंगा''। उसके इस क़दर जुनून से कभी–कभी मुझे घबराहट भी होती। वो मुझे समझाता, "बहादुर बनो, देश का गौरव बनो। हमें एक आम नागरिक से अलग जीवन जीना है।"

इधर बी.ए. के बाद मैंने एम.ए. में दाखिला लिया और उधर चन्दर का सेना में चयन हो गया। उसकी पहली तैनाती कश्मीर सीमा पर हुई थी। दो साल तक हमारी पत्र के माध्यम से ही बातचीत होती रही। सीमा पर एक घर में कुछ आतंकवादी घुसे हुए थे। उसने उन सभी को बड़ी बहादुरी पूर्वक मार गिराया था। उसके इस साहसिक एवं वीरतापूर्ण कार्य के लिए उसे 'वीर चक्र' से सम्मानित भी किया गया था। दो साल बाद उसकी नियुक्ति भोपाल में हो गई। चन्दर के पिता अब सेवानिवृत्त हो चुके थे। भोपाल जाने से पूर्व ही चन्दर ने मेरे पिता से मेरा हाथ मांग लिया था। मेरा भी एम.ए. पूरा हो चुका था। अतः डैडी को कोई आपत्ति नहीं थी। उन्होंने विवाह की रज़ामन्दी दे दी। दोनों परिवारों की दोस्ती अब सम्बन्धियों में परिवर्तित हो चुकी थी। मैं भी अपने घर से जुड़ी यादें समेटे एक नए शहर में अपना घर बसाने चल पड़ी थी। जहां मेरा सबसे अच्छा दोस्त, अब, मेरा हम–सफर बन कर खड़ा था। हम दोनों बहुत खुश थे। समय जैसे पंख लगाकर उड़ रहा था।

कब शादी को एक साल बीत गया, पता ही नहीं चला। अब मां व पिता जी की एक ही ख्वाहिश थी कि घर के आंगन में किलकारी गूंजे और वे भी उसके साथ खेलें। कुछ समय बाद मैंने एक बेटी को जन्म दिया। पिता जी ने बड़े चाव से उसका नाम **मुस्कान** रखा। मां–पिता जी को तो जैसे कोई खिलौना मिल गया था। वे अपना सारा वक्त उसी के साथ बिताते थे। अभी मुस्कान दो साल की हुई थी कि पिता जी को Severe Heart Attack आया और वे हम सबको छोड़ कर चले गए। घर की सारी जिम्मेदारी अब चन्दर के कंधों पर आ गई थी। उसे घर के साथ–साथ मां को भी संभालना था। इसीलिए वह भोपाल से बाहर कहीं जाना नहीं चाहता था।

गत वर्ष जब जैसलमेर सीमान्त पर हमला हुआ तो सीमा पर भेजे जाने वाले सैनिकों में उसका नाम सर्वोपरि था। अतः उसने आदेश का सम्मान किया और एक बार फिर से युद्ध क्षेत्र की ओर चल पड़ा। आखिर देश की रक्षा के लिए ही तो उसने सेना में प्रवेश किया था। जाते समय वो मुझसे यह कहकर गया था कि "मैं वापस आऊंगा, तुम मां और मुस्कान

का ख्याल रखना और अगर न आ सका तो समझना, बस इतना ही हमारा साथ था। तुम बहादुर सैनिक की बहादुर पत्नी हो जो प्रत्येक परिस्थिति का सहजतापूर्वक सामना कर सकती है। इसी विश्वास को साथ लिए जा रहा हूं।" चन्दर के ये शब्द मेरे कानों में अचानक जोर–जोर से गूंजने लगे और जैसे मैं नींद से जागी हों। मैंने स्वयं को संभाला, फिर नीचे देखा जहां मुस्कान मेरे पैरों से चिपटी खड़ी थी और पता नहीं, कब से, मम्मी–मम्मी चिल्ला रही थी। उस नादान को तो ये पता भी नहीं था कि उसके पापा अब इस दुनिया में नहीं रहे। मैंने मुस्कान को गोद में उठा लिया और मां के पास जाकर बैठ गई। मां की आंखें पथराई हुई थीं। पहले अपने पति और फिर अपने बेटे को खोने का दर्द उनकी आंखों में साफ नज़र आ रहा था। लेकिन नियति के आगे किसी का वश नहीं चलता। मैंने मां को हल्के से हिलाया तो उनकी आंखें छलछला उठीं। मैंने बड़े ही बुझे हुए किन्तु सशक्त स्वर में मां से कहा, "मां, आपने एक वीर को जन्म दिया है जिसने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। आपसे अधिक गौरवशाली और कोई नहीं हो सकता।" ये सुनते ही मां ने मुझे अपने अंक में समेट लिया और कहने लगीं, "तू बहुत धैर्यवान है बेटी। तेरा धीरज ही तुझे यह एहसास दिलाएगा कि चन्दर हर पल तेरे पास है। यही तेरे जीने की शक्ति है।" मैंने मां के घुटनों पर अपना सिर रख दिया। काफी देर से मेरे भीतर थमा हुआ समुंदर का पानी अब बह चला था।

द्वारा श्री अखिलेश चन्द्र मित्तल, वाईस–प्रेसीडेन्ट, हैवेल्स (इण्डिया) लि. इण्डस्ट्रियल एरिया, फेस टू, नीमराना–301705 (जि. अलवर, राज.)

जासूसी प्रक्रिया का बोध

अन्न का प्रभाव

— श्री कैलाश नारायण टण्डन

ईसा की दूसरी शताब्दी में हिमालय की तराई वाले प्रदेश में महेन्द्र नामक राजा शासन करता था। उसका राज्य छोटा था परन्तु समृद्धिशाली था। महेन्द्र बहुत ही विद्वान शासक था, उसके राज्य में राजनीतिज्ञों और विद्वानों की कमी न थी। उसके राज्य के उत्तर पूर्वी प्रदेश में मण्डन नाम के ऋषि रहते थे। उनके योग और तपस्या की ख्याति बहुत दूर–दूर तक फैली थी। दो पर्वतों की घाटी के बीच की उर्वरा भूमि में उनका तपोवन था। उनका आश्रम एक उद्यान के बीच में बना हुआ था। आश्रम के दाहिनी ओर शारदा नदी बहती थी। ऋषि का आश्रम विभिन्न प्रकार के पुष्पों से लदा हुआ था जिनकी भीनी–भीनी सुगन्ध हवन सामग्री की सुगन्धि के साथ मिल कर सारे वातावरण को सुगन्धित बना रही थी। ऋषि के आश्रम पर विभिन्न प्रकार की रंग बिरंगी लतायें फैली हुई थीं। उद्यान के बीच में कई मृग उछलते कूदते नजर आते थे। स्थान–स्थान पर हवनकुंड बने थे जिनमें नित्य ही नियत समय पर हवन किया जाता था।

ऋषि मण्डन देखने में अधिक वृद्ध नहीं लगते थे परन्तु वास्तव में उनकी अवस्था 80 वर्ष से कम न थी। उनके मुख पर तपस्या और ब्रह्मचर्य का तेज था। उन्हें तपस्या करते 60 वर्ष हो चुके थे परन्तु कोई भी उन्हें अभी तक अपने पथ से विचलित न कर सका था। वे थे बड़े संयमी और दृढ़। ऋषि मण्डन के संयम और तपस्या की ख्याति किसी से छिपी न थी। राजा महेन्द्र भी लगातार बीस वर्षों से यही सुनता चला आ रहा था कि ऋषि की तपस्या को भंग करना सरल नहीं है। महेन्द्र, ऋषि की परीक्षा लेना चाहता था। उसने राज्य भर में यह घोषणा कर दी कि जो स्त्री या पुरुष ऋषि मण्डन की तपस्या भंग कर देगा उसे राज्य की ओर से एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा पुरस्कार स्वरूप भेंट की जायेगी।

यह समाचार थोड़े ही समय में राज्य के कोने–कोने में पहुंचा दिया गया। घर–घर ऋषि के विषय में चर्चा होने लगी। कुछ लोगों ने इस कार्य को असम्भव बताकर राजा महेन्द्र की हंसी उड़ाई और कुछ ने वास्तव में ऋषि की परीक्षा लेने के लिए प्रयत्न किया। इतने बड़े ऋषि के ब्रह्मचर्य को

भंग करना साधारण कार्य न था। सभी उस व्यक्ति को देखने के लिए आतुर हो उठे जो ऋषि मण्डन की तपस्या भंग कर सके।

ऋषि राजा की घोषणा सुनकर मन ही मन मुस्कराये तथा अपने ध्यान में लीन हो गये। वासवी नामक एक नर्तकी बाला ने अपने नृत्य और संगीत के द्वारा ऋषि की तपस्या को भंग करना चाहा। वासवी राज्य की अनुपम सुन्दरी थी। अपने नृत्य की कुशलता और गीतों की प्रभावात्मकता के कारण उसे राजा महेन्द्र के राजभवन में विशेष सम्मान प्राप्त था। महाराज महेन्द्र के मनोरंजन का यह सुन्दरी प्रमुख साधन थी। वासवी ने अपने शरीर के विभिन्न प्रकार के सुगंधित इत्रादि से तर किया और जुही के सुन्दर पुष्पों को चुनकर जूड़े में लगाया। बैजनी रंग की कामदार साड़ी पहनी और विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सजधज कर आश्रम की ओर चल पड़ी। उसके साथ एक से एक सुन्दर युवतियां थी। वासवी के रूप के सम्मुख मेनका भी लजा रही थी।

वासवी ने आश्रम में प्रवेश किया। ऋषि के शिष्य इन नर्तकियों को स्वर्ग की देवी समझकर उनके सम्मुख नत हो गए और उनका 'देवी प्रणाम' कहकर अभिवादन किया। नर्तकियां अपनी विजय पर मन ही मन मुस्करा उठीं। उन्हें अपनी सफलता के कुछ चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। विजय की भावना से उमंगों की लहर हृदय में दबाये वे ऋषि के निकट जा पहुंची। ऋषि कई दिनों से बराबर ध्यान में लीन थे। कोकिलकण्ठी वासवी ने अपने सुमधुर स्वर में तान छेड़कर ऋषि के हृदय के सुप्त तारों को छूने का प्रयास किया। नूपुरों की ध्वनि और बालाओं के कण्ठ स्वर से सारा तपोवन गूंज उठा पर ऋषि मण्डन पूर्ववत ही बैठे रहे। संगीत अपनी ऊंची नीची लहरों पर चलता हुआ उत्कर्ष को पहुंच कर अन्त तक हो गया पर ऋषि मण्डन पर कोई भी प्रभाव न पड़ा। वासवी के सौन्दर्याभिमान को ठेस सी लगी। उसने रोष में अपने बायें पैर को पटकर घुंघरू की झनकार की और पुनः नृत्य और गीत प्रारम्भ हो गया। नृत्य और गीत की मधुरता का आनन्द लेने के लिए पुरुष ही क्या पशु पक्षी भी आकर बैठ गए। नृत्य के साथ गीत आदि सभी कुछ समाप्त हो गया परन्तु ऋषि हिले तक नहीं। चारों ओर नीरवता छा गई मानो प्रकृति भी वासवी की असफलता पर दुख प्रकट कर रही हो। वासवी निराश होकर अपनी सहेलियों के साथ लौट गई। ऋषि की विजय हुई।

इस परीक्षा में सफल हो जाने के कारण ऋषि की ख्याति और भी बढ़ गई, परन्तु नागरिकों का उत्साह धीमा न पड़ा। न जाने कितनी सुन्दरियां इसी ध्येय से ऋषि की सेवा में रहने लगीं, परन्तु ऋषि ने कभी उनकी ओर देखा तक नहीं, उनका सारा यौवन पुष्प के पराग की तरह से उड़ गया। कोई भी स्त्री ऋषि मण्डन की तपस्या भंग न कर सकी। यद्यपि स्त्रियों ने उनका व्रत तोड़ने का प्रयत्न किया परन्तु वे ऋषि के तपोबल के आगे टिक न सकीं। एक–एक कर सबको निराश होकर आश्रम को छोड़ देना पड़ा।

कई वर्ष तक ऐसे ही असफल प्रयत्न होते रहे परन्तु कोई लाभ न हुआ। जिसने भी ऋषि के व्रत को तोड़ने का प्रयत्न किया उसको निराशा ही हुई। राजा महेन्द्र भी कुछ निराश हो गए थे ऐसा पता चलने पर कि ऋषि की तपस्या को कोई भंग न कर सकेगा।

ऋषि की उत्तरोत्तर सफलता के कारण उनका मान भी दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था और उनकी ख्याति दूर–दूर तक फैलने लगी थी। जिस समय सभी हतोत्साहित और निराश थे उस समय एक युवती ने पुनः ऋषि के तपोबल को नष्ट करने का प्रयत्न किया। परन्तु उसका ढंग अन्य पूर्ववर्ती तरीकों से कतई निराला था। उसने अपना विचार किसी से प्रकट न किया वह चुपचाप अपने ध्येय की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहने लगी। उसने सोचा कि यदि वह इसे किसी को बताती है तो सम्भव है लोग उसे हतोत्साहित करें और वह अपने ध्येय में सफल न हो सके अतएव उसने इस बात को गुप्त रखना ही उचित समझा।

ऋषि के आश्रम से थोड़ी दूर उसने अपनी झोपड़ी बनाई और उसी में रहने लगी। यह झोपड़ी कुछ ऊंचे स्थान पर थी, वृक्षों और लताओं से घिरी हुई थी। इस झोपड़ी में बैठकर वह ऋषि को देख सकती थी परन्तु ऋषि उसे न देख सकते थे। इस युवती का नाम प्रेमा था। यह जन्म से ही अनाथ थी। इसी कारण अभी तक उसका विवाह न हुआ था। प्रेमा एक साहसी और ध्येयनिष्ठ युवती थी। अतएव उसने सारा समय अपने ध्येय की पूर्ति में लगाना प्रारम्भ कर दिया। वह आश्रम में लगातार बैठी रहती और ऋषि की गतिविधि पर पूर्ण दृष्टि रखने का प्रयत्न करती। इसी दृष्टि से वह कई दिन तक अपनी झोपड़ी में बैठी रही। परन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऋषि भी अपने ध्यान में लगे हुए हैं, न वह अपने स्थान

से उठते हैं और न कहीं जाते हैं। प्रेमा हतोत्साहित नहीं हुई वह धैर्य के साथ फिर अपने ध्येय की पूर्ति में लग गई।

कुछ दिन के बाद उसने देखा कि ऋषि ब्रह्म मुहूर्त में अपने स्थान से हठकर कुछ दूर तक चले जाते हैं और बाद में घने पेड़ों में अदृश्य हो जाते हैं। उस दिन मंगलवार था और उसने अगले मंगल तक पुनः प्रतीक्षा की। इस बार उसने यह जानने का प्रयत्न किया कि ऋषि कहां जाते हैं और क्या करते हैं। दूसरे मंगल का वह बेसब्री से इन्तजार करने लगी। सोमवार की रात्रि को वह उस मार्ग के एक घने पेड़ की डाल पर जा बैठी जिधर ऋषि पिछले मंगलवार को गए थे। वह पेड़ अन्य पेड़ों से अधिक घना और ऊंचा था अतएव यहां पर बैठ कर दूर तक देखा जा सकता था।

मंगलवार को प्रातः काल ऋषि अपने स्थान से उठे और फिर उसी पूर्व दिशा में चलने लगे जिधर वे पहले गए थे। प्रेमा का हृदय धड़क रहा था। वह पेड़ पर खड़ी हो गई और दोनों हाथों से डाल पकड़कर दूर दूर तक दृष्टि डालकर यह देखने का प्रयत्न करने लगी कि ऋषि कहां जाते और क्या करते हैं। उसने देखा कि ऋषि चलते–चलते एक सफेद तने वाले पेड़ के पास जाकर रुक जाते हैं और फिर तने को चाटना प्रारम्भ कर देते हैं। उसने देखा कि यह तना एक स्थान से कटा हुआ था जिसमें से धीरे धीरे दूध निकल रहा था जिसे ऋषि बड़े चाव से चाट रहे थे। थोड़ी देर के पश्चात् ऋषि पुनः उसी मार्ग पर लौट गए और जाकर तपस्या करने लगे।

प्रेमा ने देखा कि ऋषि इस पेड़ से निकले दुग्ध पदार्थ के ऊपर ही जीवित रहते हैं उसने यह भी सोचा कि ऋषि की सफलता का कारण यह दुग्ध पदार्थ भी हो सकता है और यदि इस पदार्थ से ऋषि को वंचित कर दिया जाये तो सम्भव है वह ऋषि के तपोबल को नष्ट कर सके। इस बात को ध्यान में रखकर उसने अगले सोमवार को चावल को खूब महीन पीसकर उसकी खीर बनाई और उसे ले जाकर सफेद तने के उस भाग पर लगा आई जहां से वह सफेद पदार्थ निकला करता था। मंगलवार को प्रातः काल ऋषि उस स्थान पर पहुंचे और अन्य दिनों की भांति उन्होंने उसे वृक्ष का दूध समझकर चाटना प्रारम्भ कर दिया। प्रेमा ने देखा कि ऋषि जबान चटख कर उसे चाट रहे हैं और अन्य दिनों के विपरीत वह उसे अधिक समय तक चाटते रहे। प्रेमा को अपनी सफलता के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे। प्रेमा यही क्रम कई माह तक चलाती रही और हर बार वह खीर की

मात्रा बढ़ाती गई, और ऋषि उसे सुस्वादु पदार्थ समझकर खाते रहे। इसके पश्चात उसने कुछ काल पश्चात खीर की जगह गेंहू का दलिया बनाकर उस स्थान पर लगाना प्रारम्भ कर दिया और उसकी भी मात्रा उसने धीरे–धीरे करके काफी बढ़ा दी और ऋषि उसे पूर्व पदार्थ समझकर खूब खाने लगे।

प्रेमा इस रीति से ऋषि के शरीर में अन्न पहुंचा कर ऋषि की कामाग्नि को प्रज्ज्वलित करने का प्रयत्न करने लगी और उसे अंत में सफलता के स्पष्ट चिन्ह दिखाई देने लगे। ऋषि के शरीर में अब अन्न काफी मात्रा में पहुंच गया था और प्रभाव भी अब प्रेमा को दिखाई पड़ रहा था। अब प्रेमा ने अपना शस्त्र ऋषि पर फेकने का प्रयत्न किया। प्रेमा अब पूर्ण श्रंगार कर ऋषि के सम्मुख उपस्थित होने लगी। पहले तो ऋषि कुछ विशेष आकर्षित न हुए परन्तु कुछ काल पश्चात् उन्हें प्रेमां में एक विशेष आकर्षण प्रतीत होने लगा।

एक दिन जब प्रेमा आश्रम में कुछ फूलों को चुनकर अपने जूड़े में लगा रही थी तब ऋषि की दृष्टि उस पर पड़ी। ऋषि प्रेमा की ओर देखने लगे और प्रेमा भी ऋषि की ओर। प्रेमा अपनी विजय का अनुभव कर मुस्कराई और ऋषि ईश्वरीय आनन्द का अनुभव कर। प्रेमा और ऋषि की आंखें चार हो गई और धीरे–धीरे ऋषि प्रेमा के पास खिंचने लगे। ऋषि का मन प्रेमा का सामीप्य पाने के लिए विचलित हो गया। ऋषि अपने को संभाल न सके और वे प्रेमा को पकड़ने के लिए तेजी से दौड़े। परन्तु प्रेमा अपनी जीत की खुशी में आश्रम से दूर भागती चली गई। ऋषि कुछ उदास से हो गये।

उसी दिन से उन्हें अपने जीवन में एक अभाव–सा पता चलने लगा। आज वे तपस्या करने न बैठ सके और न उन्होंने नित्यकर्म ही किए। आश्रम के शिष्य भी इस परिवर्तन को देखकर घबड़ा गए और न जाने कितने शिष्य ऋषि को पागल कहने लगे। सचमुच वे प्रेमा से मिलने के लिए पागल हो रहे थे। सभी जगह उन्हें प्रेमा ही दिखाई दे रही थी। जब ऋषि हवन करने के लिये बैठे तो वे कुछ परेशान थे। वे मंत्र का उच्चारण कर रहे थे पर उनका मन कहीं और विचरण कर रहा था। कभी–कभी मंत्र के बीच में वे सहसा प्रेमा का नाम उच्चारण कर जाते थे। उनके सभी शिष्य ऋषि की इस अवस्था पर आश्चर्य प्रकट कर रहे थे। सायंकाल वे सन्ध्या भी न कर सके। रात्रि को वे नियत समय से पूर्व ही विश्राम करने चले गए।

मध्य रात्रि तक वे इसी उधेड़–बुन में करवटें बदलते रहे। प्रातः काल थोड़ी देर के लिए उन्हें नींद आई। प्रातःकाल जब ऋषि उठे तब सूर्य की किरणें चारों ओर फैल गई थी। ऋषि कुछ अन्यमनस्क से थे। उनके मुख पर अब वह तेज न था और चिंता की रेखायें उनके मस्तक पर स्पष्ट हो रही थी। प्रेमा ही उनके विचारों का केन्द्र बनी हुई थी।

मध्यान्हकाल में प्रेमा अपने यौवन की सुगन्ध बिखेरती हुई ऋषि के पास से निकली। आभूषणों की झन्कार ने ऋषि का ध्यान केन्द्रित किया और वे अपने को सम्हाल न सके। उन्होंने पागलों की तरह एक ही सांस में न जाने कितनी बार 'प्रिय' 'प्रिय' कहकर प्रेमा को सम्बोधित किया और अपने दोनों हाथ उसे पकड़ने के लिए बढ़ाए परन्तु नटखट प्रेमा ऋषि से दूर भागने लगी। ऋषि उसके पीछे तेजी से दौड़े और उसे पकड़ कर आलिंगनपाश में जकड़ लिया। सहस्रों चुंबन उसके कपोलो पर अंकित कर दिये। प्रेमा का मुंह मारे लज्जा के लाल हो गया। शरमाकर प्रेमा ने अपने को आलिंगनपाश से मुक्त करने का प्रयत्न किया परन्तु वह अपने को छुड़ा न सकी। ऋषि उसे काफी समय तक अपनी बाहों में कसे रहे।

एक वर्ष पश्चात् जनता ने देखा कि ऋषि मण्डन अपने कंधे पर अपने पुत्र को बिठाए हुए स्वाभिमान से चले जा रहे हैं। महेन्द्र राजा को जब यह सूचना मिली तो वह हर्ष से गदगद हो गये और उन्होंने प्रेमा को एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा पुरस्कार स्वरूप प्रदान कर दी। साथ ही, उन्होंने मण्डन ऋषि को भी अपने परामर्श मण्डल में जोड़ लिया।

117/एच–2/56, पाण्डु नगर, कानपुर–208005

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ0प्र0
प्रतिवेदन वर्ष 2018–19

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, का गठन सन् 1976 ई0 में 24वें तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का 2500वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित **श्री महावीर निर्वाण समिति, उ0प्र0,** की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीनीकरण यथासमय कराया जाता है।

समिति का वर्ष 2017–18 का प्रतिवेदन **शोधादर्श–86** (जन.–जून 2018 ई.) के पृष्ठ 61–65 पर प्रकाशित है। यहां वर्ष 2018–19 (1 अप्रैल, 2018 से 31 मार्च, 2019) का प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

आलोच्य वर्ष में समिति की प्रवृत्तियों की प्रगति निम्नवत रही :–

1 तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष 1976 की श्रुत पंचमी को की गई थी और इसका विधिवत उद्घाटन 23 अक्टूबर, 1976, को प्रदेश के तत्कालीन ग्राम्य विकास मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के कर–कमलों से सम्पन्न हुआ था। पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट, चारबाग, लखनऊ द्वारा धर्मशाला के प्रथम तल पर उपलब्ध कराये गये एक कक्ष में प्रारंभ किया गया था, जो मई 2001 से धर्मशाला के द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये दो कक्षों में चल रहा है।

समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के सदस्य भी हैं जिनकी संख्या इस वर्ष 60 रही। लखनऊ में चारबाग ही नहीं वरन् आसपास की कॉलोनियों के जैन परिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। कुछ सदस्य लखनऊ के बाहर के भी हैं।

पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मों, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण साहित्य संग्रहीत है। अपने विशिष्ट संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में यह पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ, कानपुर व अन्य विश्वविद्यालयों से

सम्बद्ध शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिए लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में प्रायः 60 धार्मिक, सामाजिक, सामयिक एवं शोध पत्र–पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, षट्मासिक और वार्षिक) समिति की शोध–पत्रिका **शोधादर्श** के परावर्तन में प्राप्त होती हैं।

पुस्तकालय–वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः 20–25 पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय–वाचनालय का समय प्रातः 10.00 से अपराह्न 2.00 बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय–वाचनालय बन्द रहता है।

पुस्तकालय–वाचनालय का कार्य पूर्ववत पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम0ए0, द्वारा सुचारु रूप से देखा जाता रहा।

2 **शोधादर्श**

जैन विद्या की शोध को समर्पित शोध–पत्रिका **'शोधादर्श'** का प्रकाशन फरवरी 1986 में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारम्भ किया गया था। इसके आद्य–सम्पादक इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। जून 1988 में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक 7 से प्रधान सम्पादक के दायित्व का निर्वहन डॉ. शशि कान्त ने किया। अंक 30 (नवम्बर 1996) से अंक 56 तक प्रधान सम्पादक के कार्यभार का सम्पादन श्री अजित प्रसाद जैन ने किया। उनके निधन के उपरान्त अंक 57 (नवम्बर 2005) से अंक 67 (मार्च 2009) तक श्री रमा कान्त जैन ने इसके सम्पादन के दायित्व का निर्वहन किया।

अंक 68 (नवम्बर 2009) से **शोधादर्श** के सम्पादन का दायित्व, डॉ. शशि कान्त जैन के मार्गदर्शन में, मेरे द्वारा निर्वहन किया जा रहा है।

वर्ष 2017 में **शोधादर्श** का अंक 85 **युग–पुरुष त्रयी स्मृति विशेषांक** के रूप में प्रकाशित किया गया। यह 204 पृष्ठों का सचित्र अंक था। इसमें युग–पुरुष श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, उनके अनुज श्री अजित प्रसाद जैन और उनके कनिष्ठ पुत्र श्री रमाकान्त जैन के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित विशेष सामग्री संकलित है। इन मनीषियों के चिन्तन प्रसून भी संकलित हैं, जो शाश्वत चिन्तन को प्रोत्साहित करने में उपयोगी है।

वर्ष 2018 **में शोधादर्श** के अंक 86 व 87 प्रकाशित हुए। अंक 86 में प्राकृत मुक्तक काव्य **वज्जालग्गम** पर विशेष सामग्री प्रकाशित की गई।

साहित्य सत्कार के अंतर्गत 10 कृतियों की समीक्षा की गई। अन्य स्तम्भ भी यथावत् रहे। पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है तथा आज यह

पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक–सांस्कृतिक शोध–पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

3 तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष आर्थिक दृष्टि से निर्बल 91 विद्यार्थियों को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. 67034.60 का व्यय किया गया।

4 लेखे की स्थिति

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी श्री आलोक जिन्दल, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय को आवश्यक विवरणी यथासमय प्रस्तुत की जायगी।

कुल प्राप्तियां वर्ष में रु0 2,03,576.00 रहीं (इसमें रु0 300/– पुस्तकालय सिक्योरिटी राशि भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु. 1,71,560.60 हुआ। फिक्स डिपॉज़िट निवेशों में रु. 50,000/– की वृद्धि कर दी गई। प्राप्ति–व्यय की विवरण तालिका संलग्न है। इसमें पुस्तकालय–वाचनालय का मासिक किराया सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्ने लाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम धनराशि से होता है।

मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम किराये की अवशेष राशि रु. 70,400/– में से वर्ष 2018–19 में रु. 1600/– की दर से रु. 19,200/– की धनराशि मासिक किराये के रूप में समायोजित की गई, और अग्रिम किराये की राशि रु. 51,200/– अवशेष रही।

5 अन्य प्रवृत्तियां

वित्तीय वर्ष 2017–18 (असेसमेन्ट वर्ष 2018–19) का इन्कम टैक्स रिटर्न यथासमय जमा कर दिया गया। रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ0प्र0, लखनऊ को यथावश्यक सूचना प्रेषित की जाती रहीं।

6 अन्तिम

विगत वर्ष 2018–19 की सभी प्रवृत्तियों के सम्पादन में मुझे समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन का तथा प्रबन्ध समिति के सभी माननीय सदस्यों का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन निरन्तर उपलब्ध रहा। सभी क्रियाकलापों में समिति के माननीय सदस्यों का भी सौहार्दपूर्ण सहयोग प्राप्त रहा। इन सभी महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा व्यक्तिगत और नैतिक दायित्व है।

नलिन कान्त जैन
महामंत्री

25–6–2019

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U.P.

Statement of Receipts & Payments for the Year ending 31st March, 2019

RECEIPTS		Rs. P.	PAYMENTS		Rs. P.
Balance b/d:			Research Library:		
F.D.R.s.	25,15,000.00		Salary Libr. Asstt.	67000.00	
Savings Bank	58,772.94		Salary Cleaner	4315.00	
Cash in Hand	567.00	25,74,339.94	Contingencies	100.00	
			Books	668.00	72 ,083.00
Research Library:			Shodhadarsh Magazine:		
Security Deposit	300.00		Stationery & Prtg.	22,570.00	
Subscription	1810.00		Dispatch Postage	3,670.00	26,240.00
Misc. Receipts	696.00	2,806.00			
Shodhadarsh Magazine:			Stationery		766.00
Subscription	1700.00		Postage		437.00
Donation	32,350.00	34,050.00	T.C.S. Kosh Scholarship Exp.		67,034.60
			I.T. Counsel's & Audit Fee		5,000.00
Interest on F.D.Rs.		1,65,133.00			
Interest on Savings Bank		1,587.00	Balance c/f:		
			F.D.Rs.	25,65,000.00	
			Savings Bank	41,328.34	
			Cash in Hand	27.00	26,06,355.34
		27,77,915.94			27,77,915.94

Compiled on the basis of information and explanations furnished.

For Avanish K. Rastogi & Associates
Chartered Accountants
Alok Jindal
Partner

स्मरणीय

1. श्री महावीर प्रसाद जैन, अलवर

94–वर्षीय श्री महावीर प्रसाद जी का जन्म गोविन्द गढ़ जिला अलवर (राज.) में 10 जुलाई 1922 को हुआ था। 1937 से 1942 तक वह देश की आजादी के लिए क्रांतिकारी के रूप में प्रवृत्त रहे। पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर उन्हें पहले काल–कोठरी में रखा गया और बाद में फांसी जंगले पर रखा गया। अंग्रेज सभी धर्मो की पुस्तकें जला रहे थे तब महावीर प्रसाद जी ने कुछ लोगों के साथ मिलकर हड़ताल की और अंग्रेजी शासन से निवेदन किया कि वे धार्मिक पुस्तकों को न जलाये बल्कि एक पुस्तकालय का निर्माण करें। तब उन्हें **तत्वार्थ सूत्र** मिला और अन्य पुस्तकों का अध्ययन भी किया, उससे उनकी विचारधारा में परिवर्तन हुआ और उन्होंने गांधीवादी दृष्टिकोण को अपनाया। 1943 में प्रजा मण्डल के तत्वावधान में उन्होंने विद्यार्थी कांग्रेस अलवर की स्थापना की और 1945 में विद्यार्थी कांग्रेस राजस्थान की स्थापना उदयपुर में की। 1946 में 'कुर्सी छोड़ों आन्दोलन' में उन्हें पुनः पुलिस द्वारा पकड़ा गया और कारावास हो गया।

1949 में स्वतंत्रता–सेनानी होने के कारण उन्हें पुलिस विभाग में उप–निरीक्षक के पद पर नियुक्ति प्राप्त हुई और 1982 में इन्सपेक्टर के पद से वह सेवा–निवृत्त हुए।

तत्वार्थ सूत्र के अध्ययन से पारिवारिक जैन संस्कारों की पृष्ठभूमि में उन्हें जैन दर्शन के प्रति श्रद्धा हुई। 1985 से अलवर वापस आने पर 'मूमुक्षु मण्डल' की स्थापना की। वे प्रतिदिन प्रातः 9 से 11 और दोपहर में 3 से 5 तक नियमित रूप से स्वाध्याय करते थे। जिस दिन उनका स्वर्गवास हुआ उस दिन तक स्वाध्याय का कार्यक्रम चलता रहा। जैन ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु उन्होंने 'श्री दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति', अलवर, की स्थापना की। इससे 26 पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है और उनमें 4 पुस्तकें उनके द्वारा प्रणीत हैं। दिनांक 22 फरवरी 2016 को 94 वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया। उनके सुपुत्र श्री प्रमोद कुमार जैन का स्वर्गवास उनके एक वर्ष बाद हो गया। उनके पौत्र श्री अभिषेक जैन ने उनके सम्बन्ध में विवरण उपलब्ध कराया।

वे **शोधादर्श** के नियमित पाठक रहे। उनकी कृतियों का परिचय **शोधादर्श** में दिया जाता रहा है।

उनकी पुस्तक **योग मार्गणा** में उनका स्वयं का परिचय देखने का संयोग प्राप्त हुआ। उसके सम्बन्ध में 20–3–2012 को हमने उन्हें यह सूचित किया था – "पुलिस सेवा काल में आपने 1974 में जब आप ब्यावर में थानेदार थे तीन कुन्टल अफीम बदमाशों से पकड़ी थी और चूंकि यह अफीम तत्कालीन भैरव सिंह मिनिस्ट्री में समज़ान खां नाम के मिनिस्टर की थी, आपको इस सुकृत्य का पारितोषिक यह दिया गया था कि आपका स्थानान्तरण थाने से हटाकर पुलिस ट्रेनिंग स्कूल में कर दिया गया। यह आपकी खुशकिस्मती थी कि आपको और कोई दण्ड नहीं दिया गया। इस सन्दर्भ में मुझे अपने मित्र कोमल सिंह सिसोदिया की याद आ गई। वह बांदा जिले के एक थाने में थानेदार नियुक्त थे। वह थाना तत्कालीन मुख्य मंत्री चन्द्रभानु गुप्त के मंत्रिमण्डल में एक कद्दावर मंत्री उदित नारायण शर्मा के निवास एवं निर्वाचन क्षेत्र में था। शर्मा जी की ख्याति एक क्रिमनल लाइयर की थी और उनके परिवार के सभी सदस्य आपराधिक कार्यों में संलिप्त रहते थे। कोमल सिंह अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान थे और एक दिन उन्होंने मंत्री जी के भतीजे को रंगे हाथों पकड़ लिया और हवालात में बन्द कर दिया। अब एक तूफान खड़ा हो गया। मंत्री जी ने अपने प्रभाव से जिले भर के बाजार बन्द करवा दिये। मुख्यमंत्री जी का दौरा हुआ। मंत्री जी के आक्रोश पर कोमल सिंह को तत्काल निलंबित कर दिया गया। पुलिस अधीक्षक को असलियत मालूम थी, उन्होंने कोमल सिंह को बुलाया और कहा कि आपका कोई नुकसान नहीं होगा; निलम्बन शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा और आपका स्थानान्तरण दूसरे जिले में कर दिया जायेगा। कोमल सिंह स्वयं भी उस बदनाम थाने से हटना ही चाहते थे।

मंत्रियों की इस प्रकार की करतूतों के कुछ और दृष्टान्त भी हैं। पंजाब में प्रताप सिंह कैरों मुख्यमंत्री थे। वह किसी को साफ करवा देना चाहते थे। उन्होंने पुलिस अधीक्षक अश्वनी कुमार को ऐसा करने का आदेश दिया परन्तु अश्वनी कुमार ने ऐसा करने में असमर्थता जताई। मुख्यमंत्री से मुलाकात के बाद जब अश्वनी कुमार घर पहुंचे तो उनके स्थानान्तरण का आदेश उनकी मेज पर रखा था। दूसरे दिन ख़बर मिली कि नये पुलिस अधीक्षक के आने के बाद एन्काउन्टर में उस व्यक्ति की हत्या हो गयी।

उत्तर प्रदेश की 2003 की घटना है जब मधुमती शुक्ला की हत्या की तफ़्तीश करते हुये डायरेक्टर जनरल पुलिस महेन्द्र लालका ने अमरमणि त्रिपाठी को पकड़ लिया था और गिरफ्तार कर लिया था। उस समय मायावती मुख्यमंत्री थीं और अमरमणि त्रिपाठी पर उनकी विशेष कृपा थी। मायावती ने लालका को निलम्बित कर दिया जो उनके अधिकार क्षेत्र में भी नहीं था। लालका के रिटायरमेन्ट में भी प्रायः 6 माह का समय बाकी था। इस सम्बन्ध में **हिन्दुस्तान टाइम्स** में हमने भी विरोध प्रकट किया था और आई.पी.एस. एसोसियशन ने भी कुछ उत्तेजना दिखाई थी। तीन–चार माह के निलम्बन के बाद लालका को रीइन्स्टेट कर दिया गया। यह भी एक अपराधी को बचाने के लिए मुख्यमंत्री की मनमानी का नमूना है। मायावती ने अपने दूसरे मुख्यमंत्री काल में 2007 में कुछ आई.पी.एस. अफसरों का इसी प्रकार निलम्बन और रीइन्स्टेटमेन्ट किया था।

2. श्री हुकमचन्द जैन, मेरठ

श्री हुकमचन्द जैन का जन्म मेरठ नगर में 1 दिसम्बर 1933 ई. को हुआ था। वह हमारी बुआ जी श्रीमती मैनावती के ज्येष्ठ पुत्र थे। बचपन के साथियों में उनकी विशेष गणना थी। प्रायः हर दूसरे–तीसरे दिन उनसे फोन पर बात होती थी। पिछले दो वर्ष से वे अस्वस्थ चल रहे थे। दिसम्बर 17–18, 2019, को रात्रि में 1 बजे के लगभग उनका शरीर शांत हो गया। उनके निधन की सूचना प्राप्त होने पर हमें बड़ा आघात लगा। वह मेरठ की जैन समाज के प्रतिष्ठित कार्यकर्ता थे। उनका हमारा 86 वर्ष साथ रहा। यह जानकर हमें सान्त्वना हुई कि उन्होंने शांति पूर्वक देह त्याग किया। उनके दोनों सुपुत्रों चि. नवीन और चि. नवनीत तथा उनकी तीनों पुत्रियों के प्रति हमारे सारे परिवार ने सान्त्वना भेजी।

– डॉ. शशि कान्त

✧✧✧

साहित्य सत्कार

डॉ. अनुपम जैन की कृतियां :

1. **Mathematics in Jainism** - इसमें लेखक द्वारा जापान में अगस्त 1987 में, और लंदन यूनीवर्सिटी में मार्च 2007 में और पुनः मार्च 2016 में प्रस्तुत शोध पत्र संकलित है।

पहला शोध पत्र – Indian contribution to Mathematics with reference to Jainacharyas; दूसरा शोध पत्र – Contribution of Ancient Jaina Scholars to Mathematics; और तीसरा शोध पत्र – Newly discovered Jaina Mathematical Manuscripts and their Content, हैं। गणित जैसे गूढ़ विषय पर जो सामग्री इन शोधपत्रों में प्रस्तुत की गई है वह महत्वपूर्ण है। गणित का विषय सामान्य रूप से भी गम्भीर होता है। जैन साहित्य में गणित के विषय में जो सामग्री उपलब्ध है उसका निदर्शन लेखक द्वारा किया गया है जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन 'श्रुत संवर्धन' संस्थान, 247, देहली रोड, मेरठ–250002 से दिसम्बर 2018 में किया गया था।

2. **श्रवणबेलगोल में संख्यान (त्रय आलेख संग्रह)** – लेखक द्वारा श्रवणबेलगोल में सम्पन्न तीन विद्वत् सम्मेलनों में दिये गये व्याख्यान संकलित हैं। यह व्याख्यान "जैन गणित का वैशिष्ट्य", 'जैन गणित की प्रासंगिकता' और 'प्राकृत ग्रन्थों में गणित' हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन 2018 में गणिनी ज्ञानमती शोध पीठ, बी–20, सुदामा नगर, इन्दौर–452009 से हुआ था।

डॉ. अनुपम जैन का जन्म 1958 में हुआ था। इस वर्ष उनको अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा सम्मानित करने का आयोजन है। उनके प्रति हमारी भी शुभ कामना और आशीष है।

Soul Science (Samayasara by Jain Acharya Kundakunda, Part-2) - English Translation and Annotation by Dr. Paras Mal Agrawal; Pub. Kundakunda Gyanpitha, 584, M.G. Road, Tukogunj, Indore-452001; year 2018, Price Rs. 250/-

Dr. Paras Mal Agrawal is a scholar of Physics but he is equally interested in spiritual aspect of life. **Samaysara** is the work of Acharya Kundakunda who is reverred as the greatest spiritual thinker among the Jain scholars. Prof. consentrated his study on the following aspect :- Virtual vice, influx of karma, Stoppage of karma, shedding of karma and bonding of karma.

The **Samayasara** is a text of Jain spiritualism and is based on the doctrine of Karma.. Influx of Karma is आस्रव and its Stoppage is संवर, Shedding of Karma is निर्जरा and Bonding of Karma is बन्ध। Prof. Agarwal's commentary is supposed to inspire interest in the subject.

सम्मूर्च्छिम मनुष्य : आगमिक सत्य, विशुद्ध परम्परा : ले. आचार्य प्रवर श्री रामलालजी म.सा.; प्र. साधुमार्गी पब्लीकेशन, समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड, गंगा शहर, बीकानेर–334401; वर्ष 2018; मूल्य रु. 500/–

यह पुस्तक श्री राज कुमार सेठी, नानेश निकेतन, दिलीप नगर, रतलाम–457001 के सौजन्य से प्राप्त हुई। सम्मूर्च्छिम मनुष्य सभी अशुचि (अपवित्र, गंदे), स्थानों में, माता–पिता के संयोग के बिना स्वतः उत्पन्न होते हैं और इनकी अवगाहना अंगुल के असंख्यातवे भाग मात्र की होती है। यह विषय श्वेताम्बर आगमों के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में एक ऐसे विषय की चर्चा की गई है जिसके विषय में सामान्य जिज्ञासा सम्भव नहीं है। तथापि यह एक बौद्धिक संवाद का विषय हो सकता है और किसी जिज्ञासु को इसमें अभिरुचि जागृत हो सकती है।

डॉ. प्रेमचन्द जैन की कृतियां :

1. Dravya Sangraha & Ishtopadesh :- श्री नेमिचन्द्राचार्य द्वारा प्रणीत **द्रव्य संग्रह** और आचार्य पूज्यपाद स्वामी द्वारा प्रणीत **इष्टोपदेश** का डॉ. प्रेमचन्द्र जैन ने अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया है।

2. Chhah Ddhaala :- पं. दौलतराम जी द्वारा लिखित **छहढाला** का भी अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया है। इस पुस्तक में **पंचपरमेष्ठी स्तवन, तीर्थंकर स्तवन, एकीभाव स्तोत्र, गोम्मटेश थुधी, दर्शन पाठ, श्री**

महावीराष्टक, मंगलाष्टक स्तोत्रम्, समाधिभावना, निर्वाण काण्ड, और **जिनवाणी स्तुति** का भी अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया है। इस समस्त सामग्री का युवा पीढ़ी के लिए विशेष महत्व होना चाहिए। प्रथम पुस्तक का प्रकाशन डॉ. अनिल जैन, अनिल प्रिंटिंग प्रेस, नेहरू चौक, गंज बसौदा, जि. विदिशा –464221 तथा दूसरी पुस्तक का प्रकाशन निर्ग्रन्थ फाण्डेशन, भोपाल द्वारा किया गया है। 84–वर्षीय डॉ. प्रेमचन्द जैन सेवानिवृत्त प्रो. और प्रिंसिपल एवं डायरेक्टर, राजकीय महाविद्यालयों में रहे हैं। दोनों ही पुस्तकों का प्रकाशन 2018 में हुआ है। 'डॉ. प्रेमचंद द्वारा अंग्रेजी में पद्यानुवाद एक विशेष उपलब्धि है जिसके लिए उन्हें साधुवाद!

चिन्तामणि त्रय समीक्षा : लेखक डॉ. अनिल कुमार जैन; प्र. वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट, 81/94, नीलगिरि मार्ग, मान सरोवर, जयपुर

डॉ. पन्नालाल जैन द्वारा रचित **चिन्तामणि त्रय** – सम्यक्त्व चिन्तामणि, सम्यग्ज्ञान चिन्तामणि और सम्यक् चारित्र चिन्तामणि, का समीक्षात्मक अध्ययन डॉ. अनिल कुमार जैन द्वारा पी–एच.डी. की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था। डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, द्वारा वर्ष 2000 में उन्हें पी–एच.डी. की उपाधि से सम्मानित किया गया। यह शोध–प्रबन्ध उन्होंने अपने पिता–श्री डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' के निर्देशन में सम्पन्न किया था। शोध विषयक प्रणयन के साथ ही उन्होंने साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन के व्यक्तित्व और वैदुष्य पर भी प्रकाश डाला है। सम्यक् दर्शन ज्ञान और चारित्र मोक्ष मार्ग के साधन हैं। इनका विशेष रूप से विवेचन जैन अध्यात्म के सामान्य ज्ञान के लिए उपयोगी है। नवयुवक डॉ. अनिल जैन को आलोचनात्मक लेखन एवं अध्ययन और अध्यापन में रुचि के लिए हमारा शुभाशीष!

नरसिंहपुरा जैन समाज एवं उसका इतिहास : ले. श्री शांतिलाल जैन (जांगड़ा); प्र. कुन्दकुन्द ज्ञान पीठ, 584, एम.जी. रोड, तुकोगंज, इन्दौर–452001; वर्ष 2018; मूल्य रु. 140/–

राजस्थान में उदयपुर का विशेष स्थान है। राजस्थान में ही जैन धर्म के काफी स्मारक प्राप्त हेाते हैं। लेखक श्री शांतिलाल जैन उदयपुर के ही हैं और उन्होंने राजस्थान में जैन समाज के स्मारकों एवं विशिष्ट जनों

का विवरण इस पुस्तक में दिया है। इतिहास के प्रति जिन्हें कौतूहल है उन्हें इस पुस्तक में काफी ऐतिहासिक सामग्री मिलेगी।

यह जानकर बहुत दुख हुआ कि इस बीच शांतिलाल जी का महाप्रयाण हो गया है।

अमृतकलश : डॉ. (कु.) मालती जैन; प्र. निखिल पब्लीशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स; 37, 'शिवराम कृपा', विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा–10; वर्ष 2018

डॉ. कु. मालती जैन एम.ए. (हिन्दी–अंग्रेजी), साहित्यरत्न, पी–एच. डी., का जन्म 1 नवम्बर 1941 को कस्बा कुरावली, जनपद, मैनपुरी में हुआ था। 1970 से 2002 तक वह श्री चित्रगुप्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहीं और अंततः प्राचार्या के पद से 30 जून 2002 को सेवानिवृत्त हुईं। विगत कुछ समय से वे अस्वस्थ चल रही हैं। उनकी प्रायः 40 रचनाओं का संकलन **अमृत कलश** में प्रकाशित है। इसका सम्पादन उनके एक प्रशंसक श्री मंज़र–उल वासै द्वारा उनकी अस्वस्थता को दृष्टि में रखते हुए किया गया है। श्री वासै ने यह निवेदन किया है कि जैन दर्शन के अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद को जानने वाले सुधी पाठकगण को एक जैन धर्मावलम्बी बहन और एक इस्लाम धर्मावलम्बी भाई में इस सीमा तक नैकट्य में कोई विरोध या वैषम्य नजर नहीं आयेगा, ऐसा उनका विश्वास है।

मालती जैन समय–समय पर अपने विचार लिखती रहीं थीं और उनको प्रकाशित भी कराती रहीं थीं। **शोधादर्श** में भी उनके कुछ लेख प्रकाशित हुये थे जिनमें से 'आदि पुराण में नारी का चित्रण' इस संकलन में भी सम्मिलित है। नारी के सम्बन्ध में मालती जी ने विशेष गवेषणा और लेखन किया। अधिकांश लेख उनके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित भी हैं। यह संकलन उनकी रुग्णावस्था के बावजूद प्रकाशित हुआ, इसके लिए हम श्री वासै के प्रति भी आभारी हैं।

Living Systems in Jainism : A Scientific Study : By Prof. Narayan Lal Kachhara, Pub. KundaKunda Jnanapitha, 584, M.G. Road, Tukoganj, Indore-452001; Pub. Yr. 2018; pp. 336; Price 350/-

Prof. Kachhara had been teaching Engineering in various colleges but after retirement in 1997 he has been working for religious

and social cause, scientific speculation is his favourite, subject and he is particularly exploring the scientific nature of Jain Philosophy. In his foreword Dr. Parasmal Agrawal, also a scientist and ex -Prof. of Physics, has remarked that the present book may answer many questions regarding the soul or conciousness in living system. In the Preface the author has given arguments to show that Jainism is a scientific religion because it recognizes nature as the fundamental principle and has no need for another súper natural power for its creation and operation. Secondly, the soul substance in Jainism is governed by rules in a manner similar to rules in science for matter. The working of the mundane soul is guided by both the Gyan and the Vigyan. The discussion in the book is intended to explain the nature of soul and of universe as contained in the scriptures of Jainism and its correlation with modern scientific thought.

जैन प्रमाण शास्त्र : ले. डॉ. धर्म चन्द जैन; प्र. सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, सुबोध बॉयज उच्च माध्यमिक विद्यालय के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर–302003; वर्ष 2019; पृ. 371; मूल्य 350/–

अपने प्राक्कथन में लेखक ने इस ग्रन्थ के लिखने का उद्देश्य यह बताया है कि जैन प्रमाण शास्त्र का अध्ययन करने वाले जिज्ञासुओं को इससे प्रेरणा मिले। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रमुख जैन प्रमाण शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं मान्यताओं को स्पष्ट किया गया है तथा यथावश्यक अन्य दार्शनिक विचारधाराओं एवं मतभेदों का भी संकेत किया गया है। लेखक डॉ. धर्मचन्द जैन संस्कृत व प्राकृत भाषा एवं साहित्य के साथ भारतीय दर्शन के भी मर्मज्ञ अध्ययेता रहे हैं। लगभग 37 वर्षों के अध्यापन कार्य के पश्चात् 30 सितम्बर 2018 को सेवा–निवृत्त हुए और तत्पश्चात् भी जैन दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन में लगे हैं। विषय का विवेचन 10 अध्यायों में किया गया है। प्रमाण लक्षण, प्रमाण भेद, प्रत्यक्ष प्रमाण तथा परोक्ष प्रमाण के अन्तर्गत स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान एवं आगम प्रमाण की विशद चर्चा के साथ नये निक्षेप एवं वादविद्या पर भी विवेचन किया गया है।

वीर : स्मृति–शेष विशेषांक; अक्टूबर 2019; प्र. अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद, परिषद भवन – दिगम्बर जैन मन्दिर, पाकेट नं.–104, कालका एक्सटेंशन, अग्रवाल धर्मशाला के पास, नई दिल्ली–110019

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के मुख पत्र **वीर** का यह अंक श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज की स्मृति को समर्पित है। ग्राम शेदवाल में 22 अप्रैल 1925 को उनका जन्म उपाध्ये परिवार में हुआ था और बालक का नाम सुरेन्द्र रखा गया था। 1942 में शिक्षा पूर्ण होने के बाद वह गांधी जी के स्वतंत्र भारत हेतु आन्दोलन में शामिल हो गये और उन्हें अपने गांव से पलायन करना पड़ा। तत्पश्चात् एलापुर में आचार्य श्री कुन्थु सागर से वे जैन ग्रन्थों के स्वाध्याय हेतु मिले। देश भक्ति का जुनून आत्मभक्ति में रूपान्तरित होता गया। उन्हें मोतीझरा का असाध्य रोग हो गया। तब उन्होंने यह संकल्प किया कि यदि मैं बच गया तो आजीवन व्रत का पालन करूंगा और गांधी जैसी वेशभूषा धारण करूंगा। 1946 में शेदवाल में वर्णी दीक्षा ली और अब सुरेन्द्र के बजाए उनका नाम क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति हो गया। 25 जुलाई 1963 को मुनि दीक्षा ली और वह मुनि श्री विद्यानन्द हो गये। 1967 में उन्होंने आचार्य पद प्राप्त किया, 17 नवम्बर 1974 को दिल्ली में उपाध्याय पदवी से विभूषित किये गये और 4 वर्ष बाद उनकी एलाचार्य दीक्षा सम्पन्न हुई। 28 जून 1987 को दिल्ली में उनका आचार्य पदारोहण हुआ। उन्हें **राष्ट्र संत श्वेत पिच्छाचार्य** के नाम से पुकारा जाने लगा।

वीर के इस विशेषांक में मुनिवर की धार्मिक कृतियों का उल्लेख है तथा उनके कार्यकलापों का भी उल्लेख है। तथापि इसमें उनके दो कार्यों का उल्लेख नहीं है। विद्यानन्द मुनि के आशीर्वाद से 1974 में मेरठ में भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में **वीर निर्वाण भारती** की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि देश के मूर्धन्य जैन विद्वानों का सामाजिक स्तर पर अभिनन्दन किया जाये। इस संस्था के सचिव श्री राजेन्द्र कुमार जैन थे। पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन को इस संस्था द्वारा "विद्या वारिधि" की उपाधि से सम्मानित किया गया। विद्यानन्द जी ने पिता जी के बारे में कहा कि "वास्तव में आप विद्या वारिधि हैं। आपको जैन इतिहास के बारे में जो जानकारी है वह दुर्लभ है।"

दिल्ली में **अहिंसा इण्टरनेशनल** संस्था की स्थापना भी 1986 में मुनिराज विद्यानन्द जी के मार्गदर्शन में की गई थी। 14 दिसम्बर 1986 को

फिक्की सभागार, नई दिल्ली, में एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्द जी के सान्निध्य में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया और विद्वानों के निर्णायक मण्डल द्वारा एकमत से पिता जी को भारतीय इतिहास, लोक संस्कृति तथा जैन विद्या के क्षेत्र में समर्पित दीर्घकालीन महती सेवाओं और विपुल कृतियों के लिए "डिप्टीमल जैन स्मृति पुरस्कार" से सम्मानित किया गया। चाचा जी श्री अजित प्रसाद जैन को अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा 2003 में "प्रेमचन्द जैन पत्रकारिता पुरस्कार", से **शोधादर्श** के सम्पादक के रूप में सम्मानित किया गया। 2016 में मेरे सुपुत्र नलिन कान्त जैन को **शोधादर्श** के सम्पादक के रूप में "पत्रकारिता पुरस्कार" से सम्मानित किया गया।

22 सितम्बर 2019 को प्रातः 2:40 मिनट पर संल्लेखना द्वारा मुनिराज ने देह त्याग किया। दिगम्बर जैन परिषद से उनका विशेष सम्बन्ध रहा था।

उनके विशिष्ट योगदान के स्मरण हेतु 'श्री वर्णी जैन प्रशांतमती पाठशाला' के तत्वावधान में नेमि नगर जैन मन्दिर, दमोह, के सभा भवन में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया, जिसमें प्रमुख अतिथि डॉ. भागचंद्र जैन 'भागेन्दु' थे, और उन्होंने श्वेत पिच्छाचार्य जी के जीवन और विविध क्षेत्रों में उनके योगदान का विशेष परिचय दिया। प्रशासनिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह, में अर्थ शास्त्र की प्रोफेसर डॉ. सविता जैन ने भी आचार्य श्री के सार्वभौम चिन्तन पर प्रकाश डाला।

डॉ. (श्रीमती) संगीता शुक्ला की कृतियां –

1. तेजोवलय पद्मा मां; प्र. प्रांजल पब्लिकेशन्स, सी 33, शिवानी विहार, कल्याणपुर, लखनऊ–226022; जनवरी 2019; पृ. 112; मूल्य 150/–

लेखिका डॉ. श्रीमती संगीता शुक्ला नवयुग कन्या महाविद्यालय लखनऊ में ऐसोसिएट प्रोफेसर तथा प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व विभाग की अध्यक्ष हैं। उन्होंने अपनी मां श्रीमती पद्मा अवस्थी को यह संकलन समर्पित किया है। इसमें 80 भजन संकलित हैं जो उनकी माता जी को प्रिय थे। उन्होंने अपने समस्त परिवार की दृष्टि से यह स्पष्ट किया है कि भारत में महिलाओं का स्थान पुरुष की अपेक्षा निम्न स्तरीय नहीं है। महिला की स्थिति के सम्बन्ध में समाज का सामूहिक विचार बदलने के लिए महिलाओं को मुखर होना पड़ेगा। भारतीय नारी तेजस्वनी बनकर खड़ी हो यही

उनकी आकांक्षा है। अपनी मां के बारे में उन्होंने बहुत ही सजीव और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। अन्तिम समय तक वे सत्संग से जुड़ी रहीं और एक भजन जो वे प्रायः गाया करती थीं उसको अंतिम समय में भी गाती रहीं :— मेरे प्राण निकले सुख से, बच जाऊं घोर दुःख से।
तर जाऊं भवतरिणी से, जब प्राण तन से निकले।।

2. लोक संरक्षक दिक्पाल : प्र. मंसा पब्लिकेशन्स, 2/256, विरामखण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010; वर्ष 2019; पृ. 287

डॉ. शुक्ला ने इस पुस्तक में उत्तर भारतीय साहित्य एवं मूर्तिकला के विशेष संदर्भ में दिशाओं के आठ दिक्पालों का विवेचन किया है और इन दिक्पालों से सम्बन्धित 79 चित्र भी दिए हैं। विषय का निरूपण 10 अध्यायों में किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में दिशाओं या विश्व के रक्षक देवता के रूप में दिक्पालों की मान्यता प्राचीन काल से चली आ रही है। आठ दिशा–पूर्व, दक्षिण–पूर्व, दक्षिण, दक्षिण–पश्चिम, पश्चिम, उत्तर–पश्चिम, उत्तर, उत्तर–पूर्व हैं, जिनके दिक्पाल क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम , निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान हैं। विवेचन वेदों और पुराणों के आधार पर किया गया है। इन आठों दिक्पालों की प्रतिमाएं भी मिली हैं। ब्राह्मणीय परम्पराओं के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन परम्पराओं में भी दिक्पाल पूजन का विधान किया गया है। कला में कुछ ऐसे लक्षण भी मिले हैं जिनका साहित्य में उल्लेख नहीं है। जो विवेचन लेखिका द्वारा किया गया है वह विषय में रुचि प्रेरित करता है। इस श्रम–साध्य कार्य के लिए उन्हें साधुवाद!

गोलापूर्व जैन समाज का भारतीय संस्कृति को अवदान : सं. प्राचार्य श्री सुरेन्द्र कुमार जैन, पो. भगवां; (जि. छतरपुर)–471313; प्र. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन अध्ययन केन्द्र एवं शोध संस्थान, भगवां

मध्य भारत में जैन समाज के अन्दर गोलापूर्व जाति का विशेष स्थान है। ग्रन्थ सचित्र है। इस ग्रन्थ में गोलापूर्व समाज के सभी प्रतिष्ठित महानुभावों का परिचय उपलब्ध है जिनकी संख्या लगभग 200 है। बहुत से महानुभाव **शोधादर्श** के सुधी पाठक रहे हैं। यह मान्यता है कि जैन धर्म के अनुयायी 84 जति के हैं और इनमें गोलापूर्व सम्मिलित है। गोलापूर्व समाज की ऐतिहासिकता और उससे सम्बन्धित मूर्ति लेखों का विशद वर्णन इसमें उपलब्ध है। लखनऊ के संग्रहालय में भी महोबा से प्राप्त सं. 1211 का मूर्ति लेख उपलबध हैं। इस इन्वेंटरी से विदित हुआ कि **शोधादर्श** के

सुधी पाठक **पं. मोतीलाल जैन 'विजय'**, कटनी का समाधिमरण 7 दिसम्बर 2017 को हो गया। उनके परिवार के सदस्यों को हमारी हार्दिक संवेदना। गोलापूर्व समाज के विश्व–कोष के रूप में इस ग्रन्थ की महत्ता बनी रहेगी। साहित्यकार श्री सुरेश जैन 'सरल' का परिचय और उनका हिन्दी भाषा के प्रति संयुक्तिक अनुराग देखकर प्रसन्नता हुई। इस ग्रन्थ के सम्पादकों और नियोजकों को साधुवाद!

ऐसा वर दो : ले. श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'; 'चन्द्रा मण्डप', 370/27, हाता नूरबेग, संगमलाल वीथिका, सआदतगंज, लखनऊ–226003; वर्ष 2019; पृ. 102; मूल्य रु. 200/–

श्री 'अबोध' जी को नवीन छन्द रचना करने का विशेष उत्साह है। इस पुस्तक में उनकी वाणी वंदनाएं हैं! यह पुस्तक 'अबोध' जी की 44वीं प्रकाशित पुस्तक है। अपने कथ्य में उन्होंने समीक्षक विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त किया है और इस कृति के लेखन–प्रकाशन के सम्बन्ध में अपना विवरण दिया है। समर्पण वीणा–वादिनी सरस्वती को किया है। प्रथम भाग में पारम्परिक छन्दों में वन्दना की है, जिनकी संख्या 65 है। इनमें कुछ वि**देशी** छन्द की भी रचनाएं हैं जैसे तांका और हाइकु। द्वितीय भाग में 'अबोध' जी के 52 नये छन्द हैं जिनका प्रारम्भ **यश** छन्द से होता है –

आओ! जननी, वीणा रमनी,
जैसे सविता, त्यों हो कविता।।

परिशिष्ट में छन्दों का विवरण भी दिया है जो जिज्ञासु के लिए उपयोगी है।

– डॉ. शशि कान्त

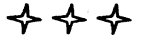

समीक्षा

श्रमण और विद्वानजनों के अंतर–बाह्य चिन्तन और प्रवृत्तियों का सूचक शोधादर्श–87

– डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

शोधादर्श अंक 87, जुलाई–दिसम्बर 2018 प्राप्त हुआ। सही मायने में कर्मयोगी स्मृति–शेष श्री अजित प्रसाद जैन (पूर्व प्र. सम्पादक.) का अंतिम संदेश **"चमत्कार की जय–जयकार"** समाज की आस्था, धार्मिक क्रियाओं और तीर्थों की उपेक्षा आदि बिन्दुओं की सच्चाई दर्शाता है जो सम्यक् सुधार हेतु मार्गदर्शक है। अभी दिल्ली का एक प्रकरण आया था जिसमें यह जानकारी प्राप्त की जा रही थी कि मन्दिर के अंदर वेदियों का क्या स्वरूप हो। कोई सज्जन मन्दिर में रागी देवी–देव की मूर्ति स्थापित करना चाहते थे। श्री अजित प्रसाद जी ने सहज ही अपनी भावाभिव्यक्ति में यह कह कर कि – 'जिन मन्दिर भगवान के समवशरण का प्रतीक है'– इस प्रश्न का समाधान दे दिया। अतः वीतरागी भगवान के मन्दिर में रागी देवी–देवताओं की वेदी बनाना वीतरागी जिनेन्द्र की घोर विराधना है और यह कार्य महापाप रूप माना गया है।

वैद्य श्री राजेशचन्द्र जैन का आलेख **जैन धर्म व जैन समाज की छवि खराब करने में दिगम्बर जैन साधुओं का हाथ** सामाजिक नेतृत्व से बिना विलम्ब आवश्यक सुधार की अपेक्षा करता है। साधुओं की चरित्र हीनता की घटनायें विगत 20–25 वर्षों से निरन्तर प्रकाश में आ रही हैं। महासभा के शिरोमणि अध्यक्ष की उपेक्षा रूप आशीर्वाद से यह प्रवृत्ति ज्योमितिक रूप से वृद्धिंगत है। चारित्रिक भ्रष्टता के साथ मानसिक भ्रष्टता भी फली–फूली है। समाज के कुछ प्रभावी महानुभाव भ्रष्ट साधुओं से यश कामना पाने के लिए उपगूहन के नाम पर शील अपहरण की निन्दनीय घटना पर लीपा–पोती करते दिखाई देते हैं जिससे भ्रष्ट साधु दण्ड–भय से मुक्त हो जाते हैं। इतर समाज के समान जैन समाज में शील अपहरण के विरोध में चेतना जागृत होने पर ही पीड़ित महिलायें साधु की यौन–पीड़ा से मुक्त हो सकेंगी।

डॉ. अनिल कुमार जैन का आलेख **जैन समाज का कर्तव्य** बोध कराता है। समाज में हिन्दू धर्म की प्रवृत्ति बढ़ रही है। धार्मिक

क्रियाओं में नवरात्रि महोत्सव की ओर रुझान अहितकर है। लेखक का **वीर**, मार्च 2009 में प्रकाशित आलेख – "नवरात्रि पर्व के अपनाने के आत्मघाती परिणाम", विचारणीय है। चुनावी मौसम में समाज किसके पक्ष में अपना मत दे, इसका निर्णय करने एवं दिशाबोध कराने के लिए जैन राजनीतिक मंच के कर्णधारों को मार्गदर्शन करना चाहिये।

स्मृति–शेष श्री रमा कान्त जैन का **पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य : का गुरूगुण–कीर्तन** हृदय को छू गया। गुरू के प्रति सर्व–समर्पण की मिसाल साहित्याचार्य जी ने प्रस्तुत की थी। जैन धर्म के शिक्षण एवं विद्वानों के समूह के उद्भव में प्रातः स्मरणीय श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी का योगदान अविस्मरणीय है। साहित्य सत्कार में **अभिनन्दन दीपिका** की समीक्षा भी प्रेरक है।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने अपने आलेख में **मुद्रण कला के इतिहास के साथ जैन प्रकाशन के इतिहास** पर तथ्यपरक व शोधपरक प्रकाश डाला है जो पठनीय है। दिगम्बर जैन साहित्य के प्रकाशन में समाज के रूढ़िवादी चिन्तन से मूल संघ का पावन साहित्य विदेशी चिन्तकों की दृष्टि में नहीं आ सका था जो अत्यधिक विलम्ब से आया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय इस दिशा में अग्रणी रहा। अभी भी धर्म संस्कृति के ऐसे महत्वपूर्ण अनेक पहलू हैं जिनकी ओर दिगम्बर जैन समाज के साधक विद्वानों की रुझान नहीं है। यह उदासीनता चिन्ताजनक है।

दार्शनिक चिन्तक डॉ. शशि कान्त जैन का **'नमोनारायण की शास्त्र सभा : ब्राह्मण श्रमण संवाद'** दो विरोधी किन्तु समान लगने वाली दार्शनिक विचार धाराओं का सटीक विवेचन है। श्रमण परम्परा को ब्राह्मणीय पक्ष द्वारा अपने में समाहित करने का प्रयास विद्यमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में रहस्यमयता को प्रकट करता है। श्रमण परम्परा को वैदिक परम्परा में समाहित करने का वैसा ही प्रयास दर्शाया गया है जैसा कि राज्य सभा की ज़िल्लत से बचने के लिए केन्द्रीय सरकार ने **गुड्स एण्ड सर्विसेज़ टैक्स ऐक्ट** को भारतीय संसद के वजट सत्र में वित्तीय विधेयक के रूप में पारित करा लिया। लेखक का यह अनूठा प्रयास दिशाबोधक है और आने वाले समय की दिशा और दशा का सूचक है। श्रमणों को अपनी संस्कृति और अस्मिता की रक्षा–सरंक्षा हेतु भगीरथ प्रयास करने होंगे।

प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' का आलेख **'जैन अतिशय क्षेत्र बहोरीबंद'** शोधार्थियों एवं इतिहास–रसिक विद्वानों के लिये चिन्तन हेतु भरपूर सामग्री प्रस्तुत करता है। बहोरीबंद के भगवान शांति नाथ जी का मूर्ति लेख सं. 10–0 टंकित है, तृतीय अंक अपठनीय है। यह मूर्तिलेख कलचुरी राजा गयकर्ण देव के शासन काल का है। **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार** में श्री गुलाबचन्द आदित्य और श्री सुरेश 'सरल' के इस विषय पर लेख प्रकाशित हुये। **तीर्थ वंदना** में भी इस विषय पर प्रकाश डाला गया। सभी लेखकों ने मूर्ति लेख का संवत 1010 (ई. 953) एवं उसे गोलापूर्व समाज की सम्पन्नता का कीर्ति ध्वज बताया। प्रो. 'भागेन्दु' ने मूर्तिलेख को विक्रम की दसवी शताब्दी का माना है। परन्तु मुझे मूर्तिस्थापन के समय पर संदेह हुआ। जैन इतिहासज्ञ डॉ. ज्योति प्रसाद जी जैन की कृति **'प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएं** से मैंने कलचुरि और चन्देल राजवंशों का अध्ययन किया। डॉ. सा. ने कलचुरि राजाओं का समय निम्न रूप से रेखांकित किया है :–

1 श्री गंगदेव विक्रमादित्य (1015–41 ई.)

2 श्रीकर्ण देव (1041–70 ई.)

3 यशः कर्ण देव (1071–1125 ई.)

4 गयकर्णदेव (1125–1154 ई.) इस राजवंश में गंगदेव विक्रमादित्य के पहले 5 राजा हुये। कलचुरी राजवंश का चेदि संवत् 249 ई. में प्रारम्भ हुआ था। उक्त तथ्यों के आधार पर मैंने दि. 12–2–2007 को श्री नीरज जैन को पत्र लिखा। पत्रोत्तर में उन्होंने डॉ. ज्योति प्रसाद जी की प्रामाणिकता स्वीकार करते हुए जनरल कनिंघम के निष्कर्ष सं. 1182 (ई. 1125) को सही माना और मूर्ति को विक्रमाब्द 1100 के पूर्व की कृति मानना उचित नहीं माना। इस विषय पर 2003 से 2017 तक विद्वानों द्वारा चर्चा की जाती रही है। मेरे भी दो लेख इस सम्बन्ध में प्रकाशित हुए हैं। एक आलेख 'बुन्देलखण्ड के प्रमुख शिलालेख और मूर्तिलेख', **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार,** जुलाई, 2011 में प्रकाशित हुआ, और दूसरा लेख– 'बहोरीबंद के भगवान शांतिनाथ का मूर्ति लेख', **समन्वय वाणी** सितम्बर 2007 में प्रकाशित हुआ। महाकौशल के कलचुरी राजा गयकर्ण देव का समय 1125 से 1154 ई. रहा, तदनुसार इस मूर्ति लेख का समय शक सम्वत् 1010 अर्थात् 1088 ई. होना

चाहिए जो गयकर्ण देव के शासन काल में आयेगा। गोलापूर्व समाज के विद्वानों द्वारा लेख को प्राचीनतर बताने से इसकी ऐतिहासिकता सशंकित हो सकती है। इस विषय में यहां मैं इतना ही लिखना चाहूंगा।

शोधादर्श सम्पादक मण्डल ने **पाठ्य पुस्तक सुधार** सम्बन्धित मेरा आलेख प्रकाशित किया। मेरी श्रम–साधना के प्रकाशन के लिये और आपकी बेवाक टिप्पणी के लिये मैं कृतज्ञ हूं। मैंने अपने आलेख में गणिनी ज्ञानमती माता जी के प्रयासों और उनकी असफलता का उल्लेख मात्र इस भाव से किया था कि प्रबुद्ध वर्ग उनके अंतरंग मनोभावों/उद्देश्य की भावधारा से परिचित हो सकें। आपने टिप्पणी लिखकर, इतिहास के पन्नों में छिपे रहस्य को प्रकट करने में सहयोग किया, तदर्थ आपका आभारी हूं।

अन्य सभी आलेख भावबोधक हैं। श्री कैलाशनारायण टण्डन का **'स्वास्थ्य सम्बन्धी सुझाव'** उपयोगी और अनुकरणीय है। साहित्य सत्कार में सात रचनाओं की सारगर्भित समीक्षा की गयी है। मुनि श्री "सौरभ सागर जी की कृति 'मंगलम् पुष्प–दन्ताद्यो' मूल आम्नायी दि. जैन परम्परा का उच्छेद करने वाली रचना सिद्ध होगी।

डॉ. शशि कान्त जी को **पेंशनर्स शिरोमणि** की उपाधि से दि. 22–11–2018 को विभूषित किया गया। समारोह के विशिष्ट अतिथि पूर्व मुख्य सचिव श्री अतुल कुमार गुप्ता के सान्निध्य में श्री वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव ने डॉ. शशिकान्त की शासकीय सेवा–यात्रा की विशिष्ट उपलब्धियों और उनके कर्तृत्व पर प्रकाश डालकर श्री जैन की सेवाओं को महिमा मंडित किया। समारोह का सचित्र प्रदर्शन प्रेरक और आहलादकारी है। डॉ. शशि कान्त जी का **शोधादर्श** के पाठकों की ओर से अभिनन्दन है। विश्वास है कि वे आयु के उच्च पड़ाव पर भी जैन सांस्कृतिक मूल्यों/मर्यादाओं का संरक्षण करते रहेंगे।

पाठकों के पत्रों के अंतरगत डॉ. परमानन्द जड़िया के विचार चिन्तनीय है। सौ. रंजना बंसल का श्री मिश्रा जी और उनके बाबा स्व. श्री खेमचंद चौधरी की उदात्त मानवीय भावनाओं के प्रति कृतज्ञता का प्रकाशन प्रेरक व मार्गदर्शक है। मेरे गुरू स्व. पं. क्षेमंकर जी (सौ. रंजना के नाना जी) प्रायः यह शिक्षा देते थे कि जितना समाज से लिया जाये, उससे कई गुना

अधिक समाज व संस्कृति को निस्पृह भाव से लौटाना चाहिये। उनकी यह शिक्षा मेरे जीवन का अंग बनी। आपके परिवार में पीढ़ी–दर–पीढ़ी समाज व संस्कृति की सेवा की ज्योति प्रकाशमान है, यह सौभाग्य सूचक चिन्ह है।

कॉलेज कॉलोनी, एमसीडी वार्ड नं. 1/268, बुढ़ार (जि.शाहडोल, म.प्र.)–484110

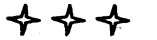

आभार

डॉ. शशि कान्त ने अपनी पत्नी मंजरी जैन की प्रथम पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में रु.10000/– भेंट किये।

श्री लून करण नाहर जैन ने श्री लून करण कमला देवी नाहर चेरिटेबुल ट्रस्ट के माध्यम से अपनी 62वीं परिणय जयंती पर रु. 6200/– और अपने पौत्र चि. अर्नव नाहर के सी.ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपलक्ष में रु.5100/– भेंट किये।

कानपुर के श्री नेमिचंद जैन ने रु. 10000/– भेंट किये।

लखनऊ की श्रीमती श्वेता जैन ने रु. 501/– भेंट किये।

लखनऊ के श्री किशोरी लाल गुप्त ने रु. 500/– और श्री आदेश जैन ने रु. 500/– श्रुत पंचमी के उपलक्ष में भेंट किये।

अभिनन्दन

2 दिसम्बर, 1918, को कुन्द–कुन्द भारती, नई दिल्ली, में **अहिंसा इण्टरनेशनल** द्वारा 45वें स्थापना दिवस के उपलक्ष में श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, में जैन दर्शन विभाग के अध्यक्ष **प्रो. डॉ. अनेकान्त कुमार जैन** को पत्रकारिता के क्षेत्र मे ऐतिहासिक कार्य करने के लिए **पत्रकारिता पुरस्कार** प्रदान किया गया।

17 दिसम्बर, 2018, को 'दिल्ली अल्प संख्यक आयोग' ने जैन दर्शन के सम्बन्ध में विलक्षण योगदान के लिए **प्रो. वीर सागर जैन** और **डॉ. अनेकान्त कुमार जैन** को **श्रेष्ठ शिक्षक सम्मान** से सम्मानित किया।

1 फरवरी, 2019, को द्रौड़गिरि में सेवा–निवृत्त आई.ए.एस. **श्री सुरेश जैन व उनकी पत्नी श्रीमती विमला जैन** (पूर्व न्यायाधीश म.प्र. उच्च न्यायालय) को समाज सेवा के क्षेत्र में दीर्घकालीन सेवाओं के लिए **समाज रत्न** अलंकरण से सम्मानित किया गया।

21 फरवरी को ग्वालियर के **श्री नरेश कुमार पाठक** को बुन्देली विकास संस्थान, छतरपुर, द्वारा **दीवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान** प्रदान किया गया।

16 मार्च को भारत के राष्ट्रपति द्वारा जगाधरी के स्वतंत्रता–सेनानी 91–वर्षीय **श्री दर्शन लाल जैन** को **पद्मभूषण** और साहित्य रत्न **श्री कैलाश जैन** को **पद्मश्री** की उपाधि से सम्मानित किया गया।

8 अक्टूबर को बिजौलिया (भीलवाड़ा, राजस्थान) में ललितपुर के **डॉ. सुनील जैन 'संचय'** को साहित्य, समाज एवं संस्कृति के प्रति उल्लेखनीय योगदान के लिए **गणेशवर्णी पुरस्कार 2019** से सम्मानित किया गया।

29 नवम्बर– 3 दिसम्बर को महमूदाबाद में आयोजित सम्मेलन में **श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री** को **आर्यिका श्री रत्नमती पुरस्कार 2019** से सम्मानित किया गया। उन्होंने जैन धार्मिक साहित्य में अपनी पद्य रचनाओं द्वारा विशेष योगदान किया है। धर्म में निष्ठा व साहित्य सृजन की प्रतिभा उन्हें अपनी माता जी श्री रत्नमती से प्राप्त हुई और गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी, बहन, से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जैन–बौद्ध दर्शन विभाग के अध्यक्ष प्रो. अशोक कुमार जैन की सुपुत्री **कु. प्रगति जैन** को माइक्रोबायोलॉजी के क्षेत्र में शोध कार्य के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, द्वारा **पी–एच.डी.** की उपाधि प्रदान की गई।

नानदेव के निवासी वयोवृद्ध **श्री शरद चंद्र देव** 'टिकैत' को Influence of Jainsim in South East Asia शीर्षक शोध–प्रबन्ध के लिए K-JJT. University, झुंझनू राजस्थान द्वारा **पी–एच.डी.** की उपाधि प्रदान की गई।

भोपाल मे **श्रीमती मणि जैन** को विगत 10 वर्षों से नारी उत्थान तथा स्वास्थ्य जागरुकता से सम्बन्धित लेखन के लिए सम्मानित किया गया। वह श्री सुभाष जैन, आई.ए.एस. की पत्नी हैं।

इंजी. श्री अनिल कुमार जैन, इन्दौर, को **सिरिभुवलय** संरचना में **भक्तामर स्तोत्र** निबद्ध करने के प्रयोग के लिए, **डॉ. मेधावी जैन,** नई दिल्ली, को International Scholars on Jainism पर लेख के लिए, और **डॉ. शुद्धार्थ प्रकाश जैन,** मुम्बई, को 'संल्लेखना की सफलता और उसका महत्व' पर लेख के लिए **अर्हत वचन पुरस्कार** के लिए चयनित किया गया।

2019 में किंग जार्ज मेडिकल यूनीवर्सिटी, लखनऊं, के जनरल सर्जरी विभाग के **प्रो. डॉ. विनोद जैन** को **इण्टरनेशनल सर्जरी सोसायटी की ओर से फैलोशिप** प्रदान की गई। इस फैलोशिप को प्राप्त करने वाले वह पहले भारतीय हैं।

श्रीमती शांता देवी रतन लाल बोबरा की स्मृति में डॉ. सूरजमल बोबरा द्वारा स्थापित ज्ञानोदय फाण्डेशन के सौजन्य से कुन्द–कुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, द्वारा जैन इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले विद्वानों को **वर्ष 2018 का पुरस्कार डॉ. स्नेह रानी जैन,** सागर, को सिंधुलिपि एवं जैन पुरावशेषों की खोज हेतु, और **वर्ष 2019 का पुरस्कार डॉ. मारुती नन्दन प्रसाद तिवारी,** वाराणसी, को प्राचीन शैल चित्रों की खोज एवं जैन प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन हेतु, प्रदान किये गये।

वीर चक्र से सम्मानित **विंग कमांडर अभिनन्दन वर्थमान (वर्धमान)** ने अपूर्व शौर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया। पाकिस्तान के बालाकोट में आतंकियों के ठिकाने को ध्वस्त करने के लिए 26 फरवरी को भारतीय वायु सेना द्वारा कार्यवाही की गई थी। 27 फरवरी को प्रातः काल पाकिस्तानी हवाई हमले का जवाब देने के लिए **अभिनन्दन** ने अपने विमान मिग–21 से उड़ान भरी थी और उन्होंने अपनी जान पर खेलकर पाकिस्तान के एफ–16 जेट को मार गिराया था परन्तु इस कार्यवाही के दौरान उनका विमान भी गिर गया और उनका पैराशूट पाक–अधिकृत कश्मीर में उतर गया। पाकिस्तानी सेना द्वारा 58 घण्टे तक कब्जे में रखे जाने के बाद **अभिनन्दन** को पाकिस्तानी सेना द्वारा भारत को लौटाना पड़ा। **अभिनन्दन**

पाकिस्तानी सेना द्वारा दी गई यातनाओं के बावजूद धैर्य धारण किये रहे और मस्तक ऊंचाकर अपने देश को वापस लौट आये। जैन समाज के लिए उनकी यह शौर्य गाथा विशेष गौरव की बात है।

***शोधादर्श* का समस्त परिवार और *तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति* उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश–वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।**

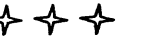

शोक संवेदन

23 नवम्बर 2018 को पटना में श्री रत्नलाल गंगवाल की धर्मपत्नी **श्रीमती सावित्री देवी गंगवाल (साबू बाई)** का निधन हो गया।

श्री मदन मोहन वर्मा की सुपुत्री सुश्री नीरजा वर्मा ने अवगत कराया कि 18 दिसम्बर 2018 को ग्वालियर में उनका निधन हो गया। श्री वर्मा **शोधादर्श** के नियमित पाठक थे और अपनी पाठकीय समीक्षा से निरन्तर अवगत कराते रहते थे।

25 फरवरी, 2019, को जैन इतिहासकार एवं पुरातत्व विज्ञ 74–वर्षीय **श्री शांतिलाल जैन जांगड़ा** का निधन हो गया। उनकी एक पुस्तक का परिचय इसी अंक में दिया जा रहा है।

25 फरवरी को ही अवागढ़ (जि. एटा) निवासी 78–वर्षीय सुश्रावक **श्री विजय स्वरूप जैन** का निधन हो गया। सब प्रकार के परिग्रह से निर्मोह होकर आध्यात्मिक चिन्तन में प्रवृत्त रहते हुए शरीर भाांत हुआ।

14 मार्च को लखनऊ में 86–वर्षीय **श्री विष्णुदत्त शर्मा** का निधन हो गया। वह **शोधादर्श** के सुधी पाठक थे।

16 अगस्त को दिल्ली में सुश्राविका **श्रीमती संतरा देवी सेठी,** दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जैन सेठी की जीवन–संगिनी का शरीर शांत हो गया।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति *शोधादर्श* परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना निवेदित है।

समाचार विविधा

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, में संगोष्ठी

26–28 अक्टूबर 2018 को भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय द्वारा पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, में Historical and Socio-cultural Significance of Jaina Inscriptions विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी में 18 शोध पत्रों का वाचन किया गया।

विश्व पुस्तक मेला

13 जनवरी, 2019, को दिल्ली के प्रगति मैदान में **विश्व पुस्तक मेले** के अवसर पर प्रो. वीर सागर जैन द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से **"जैन साहित्य का अवदान"** विषय पर एक विशेष परिसंवाद आयोजित किया गया था। इसमें प्रो. मदन मोहन अग्रवाल, प्रो. इच्छाराम द्विवेदी और प्रो. जय कुमार उपाध्ये तथा अन्य विद्वानों ने जैन साहित्य के विषय में गम्भीर विचार व्यक्त किये थे। इस बात की भी पुरजोर वकालत की गई थी कि महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में जैन साहित्य को सम्मिलित किया जाये।

पर्यावरण संरक्षण

31 मार्च को प्राच्य विद्या एवं जैन संस्कृति संरक्षण संस्थान, लाडनूं, एवं लाडनूं की ही श्री दिगम्बर जैन समाज के संयुक्त तत्वावधान में **'पर्यावरण संरक्षण : जैन दर्शन के सन्दर्भ में'**, विषय पर एक द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी की संयोजिका डॉ. मनीषा जैन थीं, और उनके द्वारा सम्पादित पुस्तक **पर्यावरण संरक्षण (जैन धर्म की दृष्टि में)** का विमोचन किया गया। संगोष्ठी तीन सत्रों में सम्पन्न हुई और उसमें 18 शोध पत्रों का वाचन किया गया।

श्रमण परम्परा पर सेमिनार

5–6 अक्टूबर को पुणे में इण्टरनेशनल स्कूल फॉर जैन स्टडीज, नई दिल्ली, और भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे, द्वारा Traces of Shramana Tradition, (with special reference to Jainism) : prior to 650 BCE विषय पर एक सेमिनार का आयोजन किया गया। इस विचार गोष्ठी में चीन से आये Shri Ven. Shi Guanguan ने The Inheritance of the Sharaman Tradition in China पर अपना व्याख्यान दिया।

World Jain Confederation

इस संस्था की स्थापना 2001 में हुई थी और इसके संस्थापक श्री प्रताप भाई सेठ थे तथा मार्गदर्शक श्री एल.एम. संघवी थे। इसका उद्देश्य देश–विदेश में जैन धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना था। 2019 में अहिंसा दिवस (2 अक्टूबर) को **Ahinsa Word** के नाम से पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया।

जैन वेबसाइट

जैनों की शादी जैन धर्म में ही हो इस उद्देश्य से www.jainsathi.com वेबसाइट की स्थापना की गई है। इस वेबसाइट पर सभी जैन निःशुल्क रजिस्ट्रेशन करवा सकते हैं।

अमन चेरिटेबुल ट्रस्ट

श्री धर्मवीर, इंजीनियर–इन–चीफ, पी.डब्लू.डी., उत्तर प्रदेश, सेवा–निवृत्त होने के बाद से अमन चेरिटेबुल ट्रस्ट के माध्यम से समाज सेवा के कार्य में लगे हुये हैं। 90 वर्ष की वय में भी वे सक्रिय हैं और अपने परिवार के सभी सदस्यों को तथा अपने मित्रों को इस चेरिटेबुल कार्य से जोड़े हुये हैं तथा प्रतिवर्ष अपनी रिपोर्ट भी प्रकाशित करते रहते हैं।

पागद भासा पत्रिका

प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में एक पत्रिका 'पागद भासा' के नाम से जिन फाउण्डेशन, नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित की जा रही है। इसके मानद सम्पादक डॉ. अनेकान्त कुमार जैन हैं।

रक्त–दान शिविर

महावीर जयंती के अवसर पर ललितपुर में जैन युवा संगठन द्वारा रक्त–दान शिविर का आयोजन किया गया। एक सौ लोगों ने रक्त–दान किया। संचालन श्री जितेन्द्र जैन और डॉ. सुनील जैन 'संचय' द्वारा किया गया।

स्वतंत्रता दिवस

जैन संस्कृत विद्यालय, साढूमल, में स्वतंत्रता दिवस पर एक भव्य आयोजन किया गया, जिसमें देश प्रेम युक्त प्रेरणात्मक भजन और चेतना जागृत करने से सम्बन्धित कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

राज्यपाल श्री लाल जी टण्डन को भेंट

भोपाल में मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री लाल जी टण्डन को बाबा दौलतराम वर्णी कृत **छन्दोदय** की प्रति श्री सुरेश जैन (आई.ए.एस.) द्वारा भेंट की गई। श्री जैन की पुत्रवधू डॉ. बीनू जैन कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी, लंदन, में प्रोफेसर हैं, उन्होंने बिज़नेस स्टडीज़ कोर्स पर अपने द्वारा लिखित पुस्तकें भी भेंट की।

✧✧✧

पाठकों के पत्र

श्री अजित जैन 'जलज', टीकमगढ़

शोधादर्श के अंकों का स्वाध्याय हमेशा की तरह सूक्ष्मता से किया, मन में अनेक विचार आये। **अंक 86** में गुरुगुण–कीर्तन में वर्णी जी की जीवन गाथा को इस तरह से समेटा गया है कि गागर में सागर कहावत चरितार्थ हो गयी है। श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जी का उद्‌बोधन प्रेरणादायी है – शूद्रों से बदतर घोषित किये गये जैनों को 'पंचम' संज्ञा की दास्तान लोमहर्षक है। फिर भी इतिहास की ओर से आते इशारे को वर्तमान समाज को नज़र–अंदाज़ नहीं करना चाहिए। शिथिलाचार के विषय में श्री अजित प्रसाद जी का चिन्तन आज अधिक समसामयिक हो गया है। कीर्ति स्तम्भ पर श्री अंशु जैन 'अमर' का लेख बहुत साहसिंक है। परन्तु इसे प्रतिष्ठा के नगाड़ों में कोई नहीं सुनेगा, और अगर कोई अन्ध भक्त सुन लेगा तो आक्रोश से भर जायेगा। डॉ. शशि कान्त का **चिन्तन विमर्श** प्रेरणादायी है परन्तु समाज को (लगता है) कोई चिन्ता नहीं है या कहें कुछ कहने या सुनने का साहस एवं सहिष्णुता का सतत् ह्रास हो रहा है। (स्व) डॉ. नेमिचन्द जैन को **तीर्थंकर** में सम्पादकीय लेखन पर इतना कुछ सहना पड़ा कि अन्तिम समय तक अपनी सच्चाई की सजा को स्वीकार नहीं कर पाये।

अंक 87 में वर्णी जी के परम भक्त पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार के गुणों का कीर्तन पढ़कर अच्छा लगा। डॉ. ज्योति प्रसाद जी का मुद्रण विधा पर लेख हमें आश्वस्त करता है कि सत्य की खोज में प्रगतिशील सुधारवादी व्यक्ति को रूढ़िवादियों से पुरविरोध का सामना करना ही पड़ता है। **नमो नारायण सम्वाद** हंसी खुशी दर्शन शास्त्र समझा गया। जैन समाज की वर्तमान स्थिति पर डॉ. अनिल कुमार जैन की सभी चिन्ताएं सही हैं परन्तु उनके निवारण के लिए नये नेतृत्व का सर्वथा अभाव है। वैद्य राजेश चन्द्र जी का चिन्तन भी इसी ओर है। वास्तव में आज आगममार्गी पंथनिरपेक्ष चिन्तकों को एक सार्थक मंच की तुरन्त आवश्यकता है।

शोधादर्श में 'ज्योति परिवार' के बाद सर्वाधिक सक्रिय भूमिका मुझे डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल जी की लगी है। इतिहास और संस्कृति के संरक्षण में पाठ्य पुस्तकों के सुधार के लिए उनके द्वारा किये गये सफल प्रयास प्रेरणास्पद एवं उत्साह–जनक हैं। अन्य सभी रचनाएं भी उत्कृष्ट हैं

परन्तु पृ. 57 पर "एक चम्मच शुद्ध शहद पीने" की सलाह को मैं हज़म नहीं कर पा रहा हूं। जैन आगम में मधु को मद्य एवं मांस की तरह पूर्णतः वर्जित माना गया है।

डॉ. अनिल कुमार जैन, जयपुर

शोधादर्श 87 से ज्ञात हुआ कि "पेंशनर्स शिरोमणि सम्मान" से आपको सम्मानित किया गया है, उसके लिए आपको बहुत–बहुत बधाई। आदरणीय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख "**मुद्रण विधा और जैन साहित्य**" ज्ञानवर्धक और महत्वपूर्ण है। इस लेख से यह भी पता चलता है कि दिगम्बर साहित्य प्रकाशन में हमारे लोगों ने बहुत विरोध किया जिसका दुष्परिणाम यह रहा कि विदेशों में दिगम्बर जैन साहित्य बहुत देर से पहुंचा। आज भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। विदेशों में साहित्य भेजने के प्रति दिगम्बरों का आज भी बहुत अधिक रुझान नहीं है।

श्री आदिकुमार भगवंतराव बंड, नागपुर

मुझे आपका **शोधादर्श** निरन्तर प्राप्त हो रहा है। इसका हर अंक संग्रहणीय और सदा पठनीय होता है। पढ़कर अपार आनन्द होता है और ज्ञानवर्धन भी होता है।

श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ

शोधादर्श 87 में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख 'मुद्रण विधा और जैन साहित्य' मुद्रणकला के इतिहास का सच्चा दर्पण है, जिसमें पुस्तकों के मुद्रण व सन् तक दिये गये हैं।

डॉ. शशि कान्त जैन जी को **पेन्शनर्स शिरोमणि** सम्मान प्राप्त हुआ; उन्हें बहुत–बहुत बधाई। इस अवसर पर उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को दर्शाता परिचयात्मक लेख पढ़ कर कुछ पुरानी यादें ताजा हो गईं। सितम्बर 2000 में उन्हें "बीसवी शताब्दी रत्न" सम्मान मिला था और मुझे भी। इसी भांति "अमेरिकन बायोग्राफिकल इन्स्टीट्यूट" द्वारा वर्ष 2003 में "मैन ऑफ द ईयर" उन्हें भी मिला था और मुझे भी।

श्री राजीव कान्त जैन की कविता "पर्यावरण के बनें प्रहरी" समसामयिक और उपयोगी है। साथ ही, श्री अमर नाथ जी का गीत "अच्छा कर" शिक्षाप्रद है।

श्री निर्मल कुमार जैन सेठी, नई दिल्ली

शोधादर्श–87 पत्रिका के माध्यम से हमें जानकारी मिली कि आपको उत्तर प्रदेश सचिवालय पेन्शनर्स वेलफेयर एसोसियेशन की ओर से **'पेन्शनर्स शिरोमणि'** की उपाधि से सम्मानित किया गया है। इसके लिए कृपया हमारी ओर से बधाई स्वीकार करें। आपकी दीर्घायु के लिए मैं भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना करता हूं।

शोधादर्श पत्रिका के माध्यम से जिन–शासन की बहुत प्रभावना होती है, उसके लिए भी आपको धन्यवाद देता हूं। मुझे तो डॉ. ज्योति प्रसाद जी जैन ने पुरातत्व की अनेक बातें बताकर प्रेरणा एवं मार्गदर्शन दिया है। मैं उसी अनुसार आप सब लोगों के सहयोग से चल रहा हूं। मैं उनकी बातें आज भी याद करता हूं, जो उन्होंने मुझे 1973 में महावीर जयन्ती के अवसर पर बताई थी।

महासभा का अध्यक्ष बनाने में स्व. श्री अजित प्रसाद जी जैन एवं स्व. श्री सुमेरचन्द्र जी पाटनी (लखनऊ) का बहुत बड़ा हाथ था। वे मुझे कोटा लेकर गये और सब लोगों से बात करके मुझे अध्यक्ष मनोनीत किया और तब से मैं समाज की थोड़ी बहुत सेवा कर रहा हूं।

डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श 87 से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उ.प्र. सचिवालय पेंशनर्स वेल्फेयर एसोसियेशन द्वारा डॉ. शशि कान्त का सम्मान हुआ। सम्मानीय व्यक्ति का सम्मान होना ही चाहिये। मेरी ओर से उन्हें हार्दिक बधाई। सम्मान समारोह के छाया चित्र देखकर अच्छा लगा।

पत्रिका का सम्पादकीय स्व. रमा कान्त जैन का शोधपूर्ण लेख पं. पन्नालाल पर और डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख मुद्रण विधा और जैन साहित्य पर, गवेषणापूर्ण है। श्री कैलाश नारायण टण्डन का लेख भी उपयोगी है। श्री राजीव कान्त जैन, श्री अमर नाथ, श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' और श्री दुलीचन्द जैन की कवितायें सुन्दर तथा प्रेरक हैं।

डॉ. शशि कान्त का नाटक **'ब्राह्मण श्रमण संवाद'** विरोधात्मक है। मैं उस पर कोई टिप्पणी नहीं करूंगा। केवल इतना ही कहना चाहूंगा कि सर्वधर्म सम्भाव के इस युग में विवादास्पद बिन्दुओं से दूर रहना चाहिये। सबको अपना धर्म तथा दर्शन प्रिय है। मैं धर्म के विषय में कुछ जानता नहीं हूं। परन्तु नास्तिक धर्म की अपेक्षा हिन्दू, मुस्लिम तथा इसाई

(आस्तिक) संख्या में बहुत अधिक हैं। अभी कुछ समय पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन में भारतीय धर्म तथा दर्शन की व्याख्या करके भारत का गौरव बढ़ाया था। **गीता** तथा **रामचरित मानस** से प्रभावित अनेक विद्वानों ने भिन्न–भिन्न भाषाओं में इनका अनुवाद किया है। आत्मा–परमात्मा जीव–जगत की व्याख्या मेरे जैसे लोग क्या करेंगे।

इधर कुछ समय से मैं देख रहा हूं कि **शोधादर्श** के लेखक व पाठक जैन बन्धु अपने अस्तित्व को बचाने हेतु चिन्तित हैं। हिन्दु तथा जैन के बीच एक दीवार खड़ी करना चाहते हैं, जबकि इन दोनों के रीति–रिवाज व्याह–शादी, रहन–सहन एक से हैं। सिख, जैन, बौद्ध सभी हिन्दू हैं। स्वास्तिक (सथिया) का चित्र हिन्दू भी अपनी पूजा में रखते हैं। शारदा की पूजा हिन्दू तथा जैन दोनों करते हैं। सबके नाम एक से हैं– फिर चाहे वे सिख हों अथवा जैन। अतः यह कहना कि जैन संख्या में घटते जा रहे हैं, कदापि उचित नहीं है।

डॉ. प्रेमचन्द जैन, बेंगलूरू

शोधादर्श का 87वां अंक अनेक दृष्टियों से पठनीय है। पाठ्य पुस्तकों में सुधार सम्बन्धी डॉ. बंसल का लेख स्तुत्य है। उन्होंने एक ज्वलन्त समस्या के प्रति हम सबका ध्यान आकृष्ट किया है। करुणा–दया जैनधर्म का मुख्य अंग है। आचार्य सोमदेव सूरि ने लिखा है – पूजा, दान, व्रत, उपवास आदि खेती के समान है (जिसका फल मिले, न भी मिले) पर करुणा जीव–दया साक्षात कल्पवृक्ष है जो उचित फल देता ही है। श्री 'जलज' जी ने एंक छोटे से लेख में अमितगति के **सामायिक पाठ** के प्रथम पद की अच्छी विवेचना की है।

डॉ. 'भागेन्दु' जी का बहोरीबंद सम्बन्धी आलेख और श्री सुरेश जैन का नैनागिरि तीर्थ का विवरण अत्यंत ज्ञानवर्धक है। डॉ. 'भागेन्दु' ने देवगढ़ की जैन मूर्तिकला पर पी–एच.डी. उपाधि प्राप्त की है, अतः वे मूर्तिकला और जैन तीर्थ के सूक्ष्म विवरण के अधिकारी विद्वान है। इसी प्रकार श्री सुरेश जैन भी स्वयं नैनागिरि के मूल निवासी हैं। बचपन से इस तीर्थ की वंदना–अर्चना करते रहे हैं। उन्होंने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से नैनागिरि का सम्पूर्ण सूक्ष्म वर्णन किया है। प्रशासनिक सेवा में महत्वपूर्ण पदों पर रहते हुए भी उन्होंने देवदर्शन को कभी नहीं छोड़ा। प्रातः काल नंगे पैर देवदर्शन उनका नियम रहा है। इन दोनों लेखों को पढ़ने के बाद जब इन क्षेत्रों के दर्शन करते हैं तो भक्ति–भाव का वेग कई गुणा बढ़ जाता है।

श्री कैलाश नारायण टण्डन के स्वानुभव पर आधारित स्वास्थ्य सम्बन्धी सुझावों को यद्यपि मैं कोई चुनौती नहीं दे रहा हूं, कदाचित् ये कुछ दृष्टियों से सही हो सकते हैं पर जैन दर्शन की दृष्टि से उनमें गम्भीर दोष हैं। श्री रमाकान्त जी का डॉ. पन्नालाल जी सम्बन्धी लेख और डॉ. भागचन्द्र जी 'भागेन्दु' द्वारा सम्पादित **अभिनंदन दीपिका** पूर्णरूपेण पठनीय है। डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य जैन समाज के स्थायी स्तंभ रहे हैं उन्होंने जैन आगम की अकथनीय एवं अद्वितीय सेवा की है। अनेक ग्रन्थों का सरल हिन्दी में अनुवाद करके उन्होंने महत्वपूर्ण जैन ग्रन्थों को पठन–पाठन के लिए जन साधारण को उपलब्ध कराया है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाये वह थोड़ी ही है।

मुद्रण विधा और जैन साहित्य विषयक डॉ. ज्योति प्रसाद जी का लेख प्रायः विलुप्त इतिहास का बोध कराता है। डॉ. शशि कान्त जैन को प्रदत्त **पेन्शनर्स शिरोमणि** सम्मान वस्तुतः उनके महत्वपूर्ण योगदान का सम्मान है। इससे हम सभी भी अपने आपको सम्मानित अनुभव करते हैं।

साहित्य सत्कार के अन्तर्गत आपने मुनि श्री सौरभसागर जी द्वारा रचित **मंगलम् पुष्पदंत्ताद्यो** पर लिखा है। प्रत्येक शिष्य का यह परम कर्तव्य है कि वह अपने गुरु की गौरव गाथा लिख कर उनका गुणानुवाद करे किन्तु इस प्रयास में मूल आगम को परिवर्तित करना अभीष्ट नहीं है। यदि आचार्य कुन्द–कुन्द एक काल्पनिक व्यक्ति थे तो समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्ट–पाहुड़ आदि महान ग्रन्थ किसने लिखे हैं। सच तो यह है कि आज का कोई भी आचार्य या मुनि आचार्य कुन्द–कुन्द जी के चरणों की धूलि भी नहीं है। उनके योगदान को सभी जन एक स्वर से स्वीकार करते हैं। यदि प्रवृत्ति ऐसी ही रही तो कोई अन्य उत्साही शिष्य अपने गुरु को महिमा मण्डित करने के लिये उन्हें साक्षात् गणधर के समान बताने का प्रयास करेगा।

श्री बी.डी. अग्रवाल, लखनऊ

पेंशनर्स शिरोमणि सम्मान प्राप्त करने के लिए आपको हार्दिक बधाई। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपके मार्गदर्शन तथा सम्पादक मंडल के अथक परिश्रम के फलस्वरूप पत्रिका का प्रभाव क्षेत्र निरन्तर बढ़ रहा है। पत्रिका में सभी लेख व कवितायें अधिक परिश्रम से विज्ञतापूर्ण भाषा में लिखे नजर आये।

स्वर्गीय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख 'मुद्रण विधा और जैन साहित्य' विशेष तौर पर संग्रहणीय लगा।

प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', दमोह

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रकाशित और इतिहास–पुरुष–वटवृक्ष आद्य सम्पादक श्रद्धेय (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जी के संपुष्ट गुण–गौरव–संचलित सम्पादन–मर्मज्ञता की परिचायक, मनीषी सम्पादकों के आदर्शों से अनुप्रणित तथा आपके मार्गदर्शन में सम्पादित **शोधादर्श** की 87वीं किरण प्राप्त कर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

शोधादर्श की इस किरण में भी सम्पादकों का प्रतिभा दायित्व–बोध यथावत् निदर्शित है। वस्तुतः यह टीम–वर्क है। अतः आपके माध्यम से **शोधादर्श**–परिवार के सभी सदस्यों का हार्दिक अभिनन्दन।

इस किरण में परम श्रद्धेय गुरुवर पण्डित प्रवर डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के 'गुरुगुण–कीर्तन' और उन्हें समर्पित अभिनन्दन ग्रन्थ का साहित्य–सत्कार कर महनीय कार्य किया गया है। साथ ही, इस अंक में प्रकाशित इतिहास और संस्कृति के निदर्शक सभी आलेख प्रशंसनीय है। विशेष रूप से मुद्रण विधा और जैन साहित्य, ब्राह्मण–श्रमण सम्वाद, जैन समाज की वर्तमान स्थिति और हमारा कर्तव्य, मानवीय करुणा महल के स्थायी स्तम्भ, बहोरीबन्द, नैनागिरि तीर्थ – महत्वपूर्ण ऐतिहासिक लैम्प–पोस्ट का कार्य करते हैं।

इसी संदर्भ में विशेष रूप से निवेदन है कि – शोधादर्श पत्रिका का अध्ययन–अनुशीलन, अनुसन्धान और शोध–खोज के क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। अतः इसमें प्रकाशित आलेखों के साथ निदर्शित सन्दर्भों को भी पूर्ववत प्रकाशित करने का प्रावधान अवश्य रखने का अनुग्रह कीजिए।

साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जी जैन की सृजनशीलता और वैदुष्य पर दो विद्वानों ने पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की – 1. उनके ग्रन्थ **चिन्तामणि–त्रय के समीक्षात्मक अध्ययन** पर डॉ. अनिल कुमार जैन ने 1996 में डॉ. हरिसिंह गौड़ विश्वविद्यालय, सागर, से पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की; **2. आधुनिक संस्कृत साहित्य के विकास में साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जी का योगदान** विषय पर डॉ. श्रीमती अचला जैन को देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, द्वारा पी–एच.डी. की उपाधि वर्ष 2014 में प्रदान की गयी।

श्रीमती रंजना बंसल, बुढ़ार

शोधादर्श 87 में प्रकाशित संस्कृति, साहित्य, इतिहास, अध्यात्म, श्रमण परम्परा, तीर्थ, शिथिलाचार और दैनिक जीवन के विषयों को समाहित कर छोटी सी पत्रिका में "गागर में सागर" भर दिया है। सम्पूर्ण पत्रिका को आद्योपान्त पढ़ा।

आपने मेरे बाबा जी के बारे में पत्र प्रकाशित किया, कृतज्ञ हूं। उनकी उदारता, परोपकारोन्मुखी वृत्ति से जन साधारण प्रेरणा पायेंगे। मेरे पिता स्व. श्री शीतलचंद जैन और मां स्व. विशल्या जैन ने भी हम सब में उनके संस्कार दिए।

डॉ. सुनील 'संचय' तथा श्री अजित जैन 'जलज' के लेख क्षमाधारण करने और अध्यात्म–मय जीवन शैली अपनाने का संदेश देते हैं।

सम्माननीय डॉ. शशिकांत जैन को **पेंशनर्स शिरोमणि** सम्मान में उनके जीवनवृत्त को पढ़कर मन प्रमुदित हुआ। इतने सम्मान पाकर भी गर्वोक्त न होकर दूसरों को प्रेरणा देना तथा चरैवेति–चरैवेति का संदेश देना ही उनकी महानता है।

श्री सुरेश जैन 'सरल', जबलपुर

शोधादर्श 87वां अंक मेरे हाथ में है। धीरे–धीरे 3 दिनों में पढ़ गया हूं। सामग्री तो उत्तम ग्रथित की है। लेख व्यवस्थित हैं। कविताएं कुछ लचर हैं। पाठकों के पत्र अच्छे लगे। **शोधादर्श** का गुणगान कौन न करेगा? यदि मैं लेखकों के सम्मान में उनके नाम स्पष्ट करूं तो कहना होगा कि हर लेखक ने विवेकपूर्ण कलम चलाई है, सो सभी को बधाई।

डॉ. शशि कान्त जी, डॉ. 'भागेन्दु' जी, श्री सुरेश जैन आई.ए.एस, भोपाल, श्री आदिकुमार बंड, आदि अपनी विषयवस्तु के कारण विशेष हैं।

यह जानकर खुशी हुई कि डॉ. शशि कान्त जी को उ.प्र. सचिवालय पेन्शनर्स वेल्फेयर एसोसियेशन' ने **'पेंशनर्स शिरोमणि'** उपाधि से अभिनंदित किया है। मेरी बधाई।

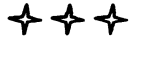

धन्यवाद ज्ञापन

मैं सभी मनीषी विद्वान मित्रों का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे मिले **पेंशनर्स शिरोमणि सम्मान** के लिए बधाई दी और अभिनन्दित किया। कुछ अन्य मित्रों ने भी फोन द्वारा और स्वयं मिल कर अपने आत्मीय विचार प्रकट किये। वास्तव में यह सम्मान उन सभी मित्रों की शुभ कामना और बुजुर्गों के शुभाशीष का सुफल है।

कुछ विद्वान मित्रों ने अपनी निष्ठा के अनुसार कुछ शंकाएं प्रस्तुत की हैं:–

मधु

जहां तक मधु का अर्थ पिये जाने वाले शहद को मद्य–मांस के समान निषिद्ध सूचित किये जाने का प्रश्न है, मेरा सविनय निवेदन है कि मधु का अर्थ महुआ होता है जिससे देशी शराब बनाई जाती है और महुवे के फूलों की गंध भी किंचित मादकता प्रसारित करती है। शहद का उत्पादन वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है और उसमें किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होती, तथा इसके लिए प्रशिक्षण भी दिया जाता है। वास्तविकता को देखते हुये शहद को मधु का वह रूप नहीं माना जाना चाहिए जिसका उल्लेख मद्य–मांस के साथ किया जाता है। उस स्थिति में मधु का अर्थ महुआ से समीकृत होगा ताकि मद्य–मांस के समान ही वह एक मादक द्रव्य के रूप में उसी श्रेणी का पदार्थ होगा और निषिद्ध होगा। तथापि यदि कोई सज्जन शहद का सेवन न करना चाहें तो उसमें कोई बाधा नहीं है।

रात्रि भोजन

रात्रि में भोजन के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि जिस जमाने में रात में भोजन न करने की बात कही गई थी उस समय रात में आम–तौर से प्रकाश की व्यवस्था नहीं थी। उस समय तो सब कारोबार भी सूर्यास्त के पहले ही बंद कर दिये जाते थे। अब समय बदल गया है और रात्रि में प्रकाश की समुचित व्यवस्था रहती है। चिकित्सकीय दृष्टि से सोने से दो घण्टे पहले भोजन कर लिया जाना चाहिए। वर्तमान कार्यशैली के अनुसार रूढ़िवादिता की दृष्टि से रात्रि में भोजन का निषेध समीचीन नहीं है। तदपि यदि कोई सूर्यास्त के बाद भोजन न करना चाहे तो उसमें कोई बाधा नहीं है।

हिंदू और जैन

यह विवाद का प्रश्न नहीं है कि जैन धर्मानुयायी वेदपरक–सनातन धर्मी हिंदू समुदाय से भिन्न हैं। सामान्य बोलचाल की भाषा में मुस्लिम, इसाई और पारसी धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त सभी भारतीय हिंदू कहे जाते हैं। परन्तु जब भारतीय संस्कृति की विचारधाराओं की चर्चा होती है तो विदित होता है कि

भारतीय संस्कृति में दो विशिष्ट विचारधाराएं हैं – एक ब्राह्मण और दूसरी श्रमण। ब्राह्मण विचार धारा में जो कुछ भी संसार में हो रहा है और व्यक्ति के साथ होता है उसके लिए ब्रह्मा अर्थात् ईश्वर को जिम्मेदार माना जाता है; श्रमण विचारधारा में व्यक्ति के स्वयं के श्रम अर्थात् कर्म के अनुसार उसकी दशा या पर्याय परिवर्तित हो सकती है। जैनधर्म श्रमण विचारधारा से प्रेरित है, अतः वह सामान्य सनातन हिंदू धर्म से भिन्न है और उसके संरक्षण के विषय में यदि कोई चिन्तन किया जाता है तो उसे विरोधात्मक नहीं माना जाना चाहिए।

जहां तक **हिंदू** शब्द का प्रश्न है, यह शब्द **फारसी भाषा** का है और इसका अर्थ उस भाषा में अपमान सूचक है। प्रायः 700 वर्ष (1100 से 1800 ई) हमारे देश पर आक्रमणकारी मुसलमानों का शासन रहा। मुसलमान शासकों की राजकीय भाषा (official language) फारसी थी और वे यहां की विजित जनता को अपमान सूचक **हिंदू** शब्द से सम्बोधित करते थे। खिदमतगारों के लिए **उर्दू** का प्रयोग किया जाता था। उर्दू दिल्ली क्षेत्र की **खड़ी बोली** के वाक्य–विन्यास (syntax) पर आधारित है और इसमें फारसी के शब्द बहुतायत से हैं। आज भी अशराफ़ (शरीफ़ अर्थात् आक्रमणकारी मुसलमान शासकों के वंशज) मुसलमान फ़ारसी जुवान को साहित्य का आधार मानते हैं। यह विस्मय की बात है कि किसी भी इतिहासवेत्ता ने और साहित्यकार ने इस वास्तविकता को उजागर नहीं किया। हम भारतीय अपने इतिहास और संस्कृति के बारे में जो कुछ जानते हैं वह 1800 ई. के बाद ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत पाश्चात्य जिज्ञासुओं की प्रेरणा से सम्भव हुआ। आधुनिक शिक्षा प्राप्त कुछ भारतीयों ने भी इस दिशा में कार्य करना प्रारम्भ किया। अपने प्राचीन इतिहास के विषय में हम सब कुछ भूल चुके थे। धीरे–धीरे शिलालेखों और पुरावशेषों से जानकारी प्राप्त करने के प्रयास प्रारम्भ हुये।

मधु. रात्रि भोजन और **हिंदू व जैन** धर्मानुयायियों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये गये हैं वह मैंने अपने चिन्तन के आधार पर किये हैं। अन्य विद्वान भी कृपया इस सम्बन्ध में चिन्तन /विचार करना चाहेंगें। सभी मित्रों के प्रति मेरी मनोभावना है : –

चन्द्र वदन है सुधा सदन, अमृत कण टपकाता जा।
अवसाद ठहर नहीं पाये, मन्द–मन्द मुस्काता जा।।

– डॉ. शशि कान्त

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क रु. 60/–(साठ रुपये), **'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज,चारबाग, लखनऊ–226004'**, को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क 25 डालर है।

शोधादर्श षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख सामान्यतया हिन्दी में होने चाहियें परन्तु अंग्रेजी में भी भेजे जा सकते हैं। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक